# परिप्रेक्ष्य

## शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 15, अंक 2, अगस्त 2008

**राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय**
**17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016**

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2008

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में होता है। इसके समूल्य प्रकाशन की योजना विचाराधीन है, इसलिए इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह पत्रिका न्यूपा वेबसाइट – www.nuepa.org पर भी नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

**परिप्रेक्ष्य**

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17–बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली–110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बच्चन सिंह, बी–275, अवन्तिका, रोहिणी से. 1, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसैट होकर वृजवासी प्रिन्टर्स प्रा. लि. नौएडा, उत्तर प्रदेश, में न्यूपा के प्रकाशन एकक द्वारा मुद्रित।

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 15, अंक 2, अगस्त 2008

# विषय सूची

*आलेख*

**अनिल सद्गोपाल**
नव उदारवाद और शिक्षा का अधिकार 1

**सुमित्रा सिंह और मैथिली रमण प्रसाद सिंह**
भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्वतंत्रता एवं अनुशासन की अवधारणा 17

**दीपा कृष्ण और सरोज आनंद**
प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों की प्रभाविता 29

**आलोक गार्डिया और अशफाक अहमदी**
इस्लाम में निहित शैक्षिक संकल्पनाओं का सम्प्रत्यात्मक अनुशीलन 37

*शोध टिप्पणी / संवाद*

**सुधीर कुमार शर्मा और नीतू शर्मा**
सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की विशिष्ट सामाजिक अभिवृत्तियाँ 47

**रमेश कुमार**
उत्तर प्रदेश की उच्चतर प्राथमिक स्तर पर संस्कृत की पाठ्य पुस्तकों में वर्णित मानव मूल्यों का अध्ययन 61

**दिनेश कुमार सिंह**
वर्तमान संदर्भ में शांति शिक्षा की सांदर्भिक उपादेयता 71

**सुभाष सिंह**
माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में पर्यावरण बोध 83

**रमा मैखुरी**
प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता : कक्षा पांच में अध्ययनरत शहरी/ग्रामीण विद्यार्थियों का गणित एवं हिंदी विषयों में उपलब्धियों का तुलनात्मक अध्ययन 93

**एस.पी. गुप्ता और सुजीत कुमार**
माध्यमिक विद्यालयों के प्रशासकों पर व्यावसायिक दबाव और उनका मानसिक स्वास्थ्य 105

**श्रुति आनन्द**
जनसंख्या शिक्षा का शिक्षक–शिक्षा पाठ्यक्रम से समन्वय 119

*चिंतक और चिंतन*

**सरस्वती अग्रवाल**
जिद्दू कृष्णमूर्ति का शिक्षा दर्शन 125

*समीक्षालेख*

**हरिकेश सिंह**
भारतीय शिक्षा व्यवस्था का सम्यक दिग्दर्शन 131

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 15, अंक 2, अगस्त 2008

# नव उदारवाद और शिक्षा का अधिकार

**अनिल सद्गोपाल***

वर्ष 2008-09 के बजट सत्र की शुरुआत में ही केंद्रीय सरकार ने संकेत दे दिया था कि वह शिक्षा के मौलिक अधिकार को लागू करने वाला पांच साल से टाला जा रहा विधेयक इसी सत्र में पेश कर देगी। यह इशारा पाते ही सरकार की तर्ज पर बाल अधिकार की रोटियां सेंकने वाले एन.जी.ओ. और पिछलग्गू बुद्धिजीवी सक्रिय हो गये। अखबारों में विधेयक के पक्ष में लेख छपने लगे और मासूम बच्चों के गलों में तख्तियां बैनर लटकाकर उन्हें सांसदों के दरवाजे खटखटाने घुमाया गया। यह दावा किया गया कि दिसंबर 2002 में स्वीकृत 86वें संविधान संशोधन के द्वारा संविधान में जोड़े गये अनुच्छेद 21(क) के तहत उक्त विधेयक का संसद में पेश होना ही एक ऐतिहासिक कदम होगा। भ्रम फैलाया गया कि इससे विगत साठ सालों से नहीं मिला शिक्षा का अधिकार गरीब बच्चों की झोली में होगा और कोठारी आयोग का हरेक बच्चे को उम्दा-गुणवत्ता की शिक्षा देने का सपना साकार हो जाएगा।

सरकार ने भी पूरी रस्म अदायगी की। मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने अगस्त 2005 से प्रधानमंत्री कार्यालय में धूल फांक रहे शिक्षा का अधिकार विधेयक को झाड़ा-पोंछा। तुरत-फुरत सरकार शिक्षाविदों व मंत्रालय के उच्च अधिकारियों की एक समिति की ताजी मुहर लगवाकर पुराने विधेयक को नया लोकतांत्रिक जामा पहनाया गया। रस्म अदायगी के इस तकाजे के बावजूद विधेयक के इस प्रारूप पर एक बार फिर सरकार ने एक अजीबोगरीब चुप्पी साध ली। सरकार विधेयक को पेश करने की भी हिम्मत नहीं जुटा पायी।

बहरहाल, यह किसी ने नहीं बताया कि अगस्त 2005 के जिस प्रारूप को आगे बढ़ाया जा रहा है उस पर केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (केब) की 14 जुलाई 2005 को हुई बैठक में गंभीर आपत्तियां दर्ज की गई थीं और वह स्वीकृत नहीं हो पाया था।

* विख्यात शिक्षाविद्, संपर्क : ई-8 / 29, सहकार नगर, भोपाल-462039, मध्य प्रदेश

विवादों में लिपटा यह प्रारूप मौलिक अधिकार देता नहीं वरन छीनता था– शिक्षा में गैर–बराबरी बढ़ाता था, गरीब बच्चों को अधकचरी शिक्षा देता था, सरकारी और निजी स्कूलों के शिक्षकों के बीच भेदभाव करता था और सरकारी खजाने के सहारे स्कूली शिक्षा के निजीकरण और बाजारीकरण के नये दरवाजे चतुराई से खोलता था। इसमें सरकार की वित्तीय जवाबदेही भी कम करने के प्रावधान थे।

इसके बावजूद एक उच्चस्तरीय मंत्रीमंडलीय समूह ने फैसला किया कि इस विधेयक को लागू करने के लिए सरकार के पास पैसा नहीं है। इसलिए 2006 में केंद्र ने अपनी जवाबदेही से पूरी तरह पल्ला झाड़ते हुए राज्य सरकारों को एक तथाकथित मॉडल बिल का प्रारूप भेजकर लिखा कि यदि वे चाहें तो अगस्त 2005 के घटिया प्रारूप से भी ज्यादा कमजोर उक्त मॉडल बिल को अपनी–अपनी विधानसभाओं में पारित करवा लें। राज्य सरकारों ने ऐसा करने से इंकार करते हुए मांग की कि केंद्र अपनी जवाबदेही को पूरा करने वाला विधेयक संसद में पारित करवाएं। हैरत है कि इतने महत्वपूर्ण मुद्दे पर भी सभी राजनैतिक पार्टियां चुप रहीं। क्या यह जानने की जरूरत नहीं है कि एनडीए सरकार के जमाने से चल रही टालमटोल के बाद बजट 2008 में अगस्त 2005 के बाल–विरोधी व शिक्षा विरोधी प्रारूप को फिर से आगे बढ़ाने का नाटक केंद्र ने क्यों किया? अंततः कोई तार्किक वजह बताए बगैर सरकार पीछे क्यों हट गयी?

उपरोक्त सवालों का जवाब तभी मिलेगा जब हम तीन बुनियादी मुद्दों पर विचार करने का मन बनाएंगे। पहला, भारत का शासक वर्ग अपने हित में शिक्षा नीति गढ़ने में अपना निहित स्वार्थ क्यों मानता है। दूसरा सन् 1991 में नई आर्थिक नीति के बाद वैश्वीकरण का जो दौर चला है उसके फलस्वरूप सरकारी स्कूल व्यवस्था को ध्वस्त करने और स्कूली शिक्षा का तेजी से निजीकरण व बाजारीकरण करने के लिए क्या नीतिगत बदलाव किए गये हैं। इसमें विश्व बैंक और अन्य अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों की क्या भूमिका रही है और ऐसा करवाने में उनका क्या मकसद है। तीसरा, सरकार एवं उस पर हावी कारपोरेट घरानों व वैश्विक बाजार की कैसा भारत बनाने की मंशा है और इसके लिए नया नीतिगत नजरिया क्या होगा। जाहिर है कि ये मुश्किल सवाल हैं लेकिन इन्हें हम कब तक सहेंगे? नीचे इन सवालों जूझने का प्रयास किया गया है।

## संविधान में शिक्षा के मौलिक अधिकार की मूल दृष्टि

संविधान सभा में डॉ अंबेडकर के प्रयासों के बावजूद शिक्षा को संविधान के मौलिक अधिकार वाले खंड तीन में रखा जा सका। हालांकि 14 साल की उम्र तक के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अनुच्छेद 45 संविधान के राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों पर गौर करना जरूरी है। पहला, खंड चार में यह एकमात्र अनुच्छेद है जिसकी पूर्ति के लिए समय सीमा रखी गयी थी। संविधान लागू होने के दस साल के भीतर इस संकल्प को पूरा करना था जो आज तक नहीं हुआ। दूसरा 14 साल की उम्र तक में छह वर्ष से कम उम्र के भी बच्चे शामिल थे। यानी जन्म से लेकर 6 वर्ष तक के बच्चों के पोषण, स्वास्थ्य और पूर्व प्राथमिक शिक्षा को राज्य की जवाबदेही में शामिल किया गया था। तीसरा, संविधान ने आठ वर्ष (कक्षा 1–8) को प्रारंभिक शिक्षा का एजेंडा राज्य के सामने रखा था, न कि महज पांच साल की प्राथमिक शिक्षा का चौथा, इस अनुच्छेद को अनुच्छेद 46 के साथ पढ़ा जाना चाहिए जिसमें दलित और आदिवासी बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देने के लिए राज्य को निर्देशित किया गया था।

शिक्षा के अधिकार के विमर्श में नया मोड़ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सन् 1993 में दिये गये उन्नीकृष्णन फैसले से आया। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 45 को खंड तीन के जीवन के हक वाले अनुच्छेद 21 के साथ जोड़कर पढ़ने की जरूरत है। चूंकि ज्ञान देने वाली शिक्षा के बगैर इंसान का जीवन निरर्थक है। इस तरह सर्वोच्च न्यायालय ने सन् 1993 में 14 साल की उम्र तक के बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दे दिया।

## मौलिक अधिकार और शासक वर्ग का नजरिया

सर्वोच्च न्यायालय के उक्त ऐतिहासिक फैसले के बाद भारत का शासक वर्ग लगातार इस कोशिश में लगा रहा कि किस प्रकार उन्नीकृष्णन फैसले के असर को घटाया या विकृत किया जाए। भारत सरकार की सैकिया समिति रपट (1997) और 83वां संविधान संशोधन विधेयक (1997) व उस पर मंत्रालय की संसदीय समिति ने स्कूली शिक्षा में बाजार की ताकतों को जगह देने के उद्देश्य से चतुर प्रावधान किए। लेकिन सरकार के इस नजरिए की सार्वजनिक तौर पर तीखी आलोचना हुई। अतः अगले चार साल के लिए शिक्षा के अधिकार का मसला ठंडे बस्ते में डाल दिया गया।

नवंबर 2001 में 86वां संविधान संशोधन विधेयक लोकसभा में पेश हुआ। संसद के अंदर और बाहर इस विधेयक के जन विरोधी चरित्र पर व्यापक बहस हुई। जनसभाएं हुई व रैलियां निकलीं। स्पष्ट था कि इसको पेश करने का परोक्ष उद्देश्य शिक्षा का हक देना नहीं वरन् सर्वोच्च न्यायालय के उन्नीकृष्णन फैसले से मिले व्यापक हक को छीनना था। जो अधिकार उन्नीकृष्णन फैसले से मिल चुके थे वे भी 86वां संशोधन विधेयक के चलते छिन गये। खासकर, दस वर्ष के कम उम्र के 17 करोड़ बच्चों को पोषण, सेहत और पूर्व प्राथमिक शिक्षा का मिला हक। इसके बावजूद सभी राजनैतिक दलों में आपसी सहमति बन गयी और यह विधेयक संसद के दोनों सदनों में सर्वसम्मति से पारित हो गया।

इस संशोधन के जरिए खंड तीन में अनुच्छेद 21(क) जोड़ा गया जिसके तहत 6.14 आयु समूह के बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का मौलिक अधिकार दिया तो गया लेकिन एक शर्त के साथ। शर्त यह है कि शिक्षा का मौलिक अधिकार ''उस रीति से दिया जाएगा जो राज्य कानून निर्धारित करेगा'' ऐसी शर्त क्यों लगाई गयी, यह समझने के लिए हमें वैश्वीकरण के चलते भारत की शिक्षा नीति और व्यवस्था में जो भारी परिवर्तन हुए है। उनको जानना होगा।

### शिक्षा पर नव-उदारवादी आक्रमण

भारत में वैश्वीकरण की शुरुआत की औपचारिक घोषणा तो सन् 1991 में नई आर्थिक नीति की घोषणा के साथ हुई। लेकिन इसके एजेंडे का सूत्रपात 1980 के दशक के मध्य में ही हो चुका था। इसका सबूत संसद द्वारा पारित हमारी 1986 की शिक्षा नीति में मौजूद परस्पर विरोधाभासी बयानों में देखा जा सकता है। एक ओर तो नीति ने कहा कि कोठारी शिक्षा आयोग (1964-65) द्वारा अनुशंसित पड़ोसी स्कूल की अवधारणा पर

*कोठारी आयोग ने कहा था कि पूर्व प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक उम्दा गुणवत्ता की शिक्षा देने के लिए जरूरी है कि देश के सकल राष्ट्रीय उत्पाद का कम से कम 6 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च किया जाए। इसके बावजूद सन् 1991 की आर्थिक नीति के चलते अगले 16 सालों में सकल राष्ट्रीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप में शिक्षा पर किया जाने वाला खर्च लगातार घटाया गया।*

आधारित समान स्कूल प्रणाली की ओर बढ़ने का एजेंडा बनाया जाए। शिक्षा सभी बच्चों को स्कूल के जरिए नहीं दी जा सकेगी। संबंधित आयु समूह (नॉन-फॉर्मल) धारा के जरिए शिक्षित किया जायेगा। इस समानांतर धारा में नियमित शिक्षक नहीं पढ़ायेंगे-उनकी जगह बगैर अर्हता वाले ठेके पर रखे गये निर्देशक या शिक्षाकर्मी नियुक्त किये जाएंगे। इस तरह सरकारी स्कूल ने नीचे देश के आधे बच्चों के लिए घटिया शिक्षा की एक परत बिछाने का फैसला हुआ। इस नीति में एक और परत बिछाने की घोषणा सरकारी स्कूल के ऊपर ग्रामीण क्षेत्र के मुट्ठी भर अपेक्षाकृत संपन्न तबके के बच्चों के लिए हुई-यानी नवोदय विद्यालयों की परत। इस तरह 1986 की शिक्षा नीति ने समान स्कूल प्रणाली की जगह बहु-परती शिक्षा व्यवस्था स्थापित करने की वैधानिक घोषणा कर दी जिसने 1990 के दश में वैश्विक बाजार की ताकतों को शिक्षा के निजीकरण व बाजारीकरण की धरातल दी।

नई आर्थिक नीति के बाद वैश्विक बाजार का प्रतिनिधित्व करने वाली दो ताकतवर संस्थाओं अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष एवं विश्व बैंक ने भारत सरकार के सामने कर्ज व अनुदान पाने के लिए अपनी शर्तों का पैकेज रखा। इसका नाम था 'संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम' (स्ट्रक्चरल एडजस्टमेंट प्रोग्राम)। इसके तहत सरकार के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह देश के शिक्षा व स्वास्थ्य समेत सभी समाज विकास और कल्याण कार्यक्रमों पर खर्च घटाये। सरकार ने ये शर्तें स्वीकारी। उल्लेखनीय है कि कोठारी शिक्षा आयोग ने कहा था कि पूर्व प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक उम्दा गुणवत्ता की शिक्षा देने के लिए जरूरी है कि देश के सकल राष्ट्रीय उत्पाद का कम से कम 6 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च किया जाए। इसके बावजूद सन् 1991 की आर्थिक नीति के चलते अगले 16 सालों में सकल राष्ट्रीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप में शिक्षा पर किया जाने वाला खर्च लगातार घटाया गया, सिवाय बीच के दो वर्षों के। सन् 2007-08 में यह खर्च घटते-घटते बीस वर्ष पूर्व के स्तर पर आ गया यानी सकल राष्ट्रीय उत्पाद का महज 3.5 प्रतिशत। यह इसके बावजूद हुआ है कि सर्व शिक्षा अभियान का लगभग 40 प्रतिशत बजट विश्व बैंक व अन्य अंतरराष्ट्रीय वित्तपोषक संस्थाओं से आता है और वर्तमान संप्रग सरकार प्रारंभिक शिक्षा के नाम पर 2 और माध्यमिक व उच्च शिक्षा के नाम पर 1 प्रतिशत उपकर अलग से इकट्ठा कर रही है। स्पष्ट है कि जनता के सभी तबकों को समतामूलक गुणवत्ता की शिक्षा उपलब्ध ा कराने के लिए शासक वर्ग की राजनीतिक इच्छाशक्ति घटती गयी है। ऐसा करने में वैश्विक बाजार की ताकतों का छिपा हुआ एजेंडा भारत की विशाल सरकारी स्कूल प्रणाली

*जहां पूरे भारत में केंद्रीय और राज्य सरकारें मिलकर आठ साल की प्रारंभिक शिक्षा पर लगभग 40000 करोड़ सालाना खर्च कर रही थीं वहीं विश्व बैंक ने स्वयं द्वारा प्रायोजित डीपीईपी में महज 500–1000 करोड़ रुपये सालाना खर्च करके स्कूली शिक्षा नीति पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया*

(आज लगभग 12 लाख स्कूल) को ध्वस्त करना था ताकि उसकी जगह फीस लेने वाले निजी स्कूल ले सकें। इसी एजेंडे का दूसरा पहलू सरकार को शिक्षा के प्रति अपनी संवैध ाानिक जवाबदेही से बरी होने का मौका भी देना था। लेकिन इतनी बड़ी और स्थापित व्यवस्था को खत्म करना आसान न था। अत: विश्व बैंक ने सन् 1993–94 से सरकारी खर्च में कटौती के फलस्वरूप हुई क्षति की आंशिक पूर्ति के नाम पर शिक्षा के लिए कर्ज व अनुदान का कार्यक्रम शुरु किया जिसको जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) के नाम से जाना जाता है जहां से पूरे भारत में केंद्रीय और राज्य सरकारें मिलकर आठ साल की प्रारंभिक शिक्षा पर लगभग 40000 करोड़ सालाना खर्च कर रही थी वहीं विश्व बैंक ने स्वयं द्वारा प्रायोजित डीपीईपी में महज 500–1000 करोड़ रुपये सालाना खर्च करके स्कूली शिक्षा नीति पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया। विश्व बैंक और इसकी सहचर अंतरराष्ट्रीय वित्तपोषक संस्थाओं की इस घुसपैठ के फलस्वरूप अगले 10–15 सालों में भारत की पूरी स्कूली व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो गई। वैश्विक बाजार की इस रणनीति के निम्नलिखित तत्व पहचाने जा सकते हैं :

- शिक्षा के समग्र सामाजिक विकास के उद्देश्यों की जगह महज साक्षरता संबंधी कौशलों ने ली।
- समान स्कूल प्रणाली की जगह बहु–परती शिक्षा व्यवस्था हुई। हरेक तबके के लिए एक अलग गुणवत्ता की शैक्षिक परत बिछाने का नया समाजशास्त्रीय सिद्धांत गढ़ा गया।
- नियमित शिक्षक की जगह अर्हता विहीन, कम वेतनभोगी और ठेके पर नियुक्त पैरा–शिक्षक ने ली।
- 1986 की शिक्षा नीति में संसद द्वारा निर्देशित न्यूनतम तीन कक्षा भवन और

तीन शिक्षकों वाले स्कूलों की जगह बहु-कक्षाई अध्यापन जैसी 'चमत्कारिक' अवधारणा के तहत शिक्षकों को अकेले एक साथ पांच कक्षाओं को पढ़ाने का प्रशिक्षण दिया गया।

- आठ साल की प्रारंभिक शिक्षा के संवैधानिक एजेंडे की जगह पांच साल की प्राथमिक शिक्षा ने ले ली।
- पाठ्यचर्या को ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों से काटकर बाजार के संदर्भों से जोड़ा गया (संदर्भ- एमएलएल की अवधारणा)।
- शिक्षण पद्धति का निर्धारण शिक्षा शास्त्रीय सिद्धांतों पर न होकर बढ़ते क्रम में सूचना प्रौद्योगिकी एवं उसका व्यापार करने वाली कंपनियों की तर्ज पर होने लगा।
- सरकार और पंचायती राज संस्थानों जैसे संवैधानिक निकायों की जगह शिक्षा की जिम्मेदारी तेजी के साथ गैर सरकारी संगठनों (एनजीओ) कंपनियों व कारपोरेट घरानों एवं धार्मिक (सांप्रदायिक समेत) संगठनों को सौंपने का खतरनाक सिलसिला शुरु हुआ।
- शिक्षा नीति के निर्णय हमारी संसद और विधानसभाओं में न होकर देशी व अंतरराष्ट्रीय बाजार एवं विश्व बैंक के मुख्यालय में होने लगे।
- शिक्षा के अधिकार वाले परिप्रेक्ष्य की जगह बाजार में शिक्षा की कीमत और बच्चे के परिवार की आर्थिक हैसियत वाला परिप्रेक्ष्य स्थापित हुआ।

आज शिक्षा बाजार में खरीद-फरोख्त की वस्तु बन चुकी है और इसे विश्व व्यापार संगठन के पटल पर रखने का फैसला बगैर किसी लोकतांत्रिक बहस के चुपचाप लिया जा चुका है। शिक्षा नीति की जगह अंतरराष्ट्रीय वित्त पर आधारित तदर्थ स्कीमों व परियोजनाओं (उदा. डीपीईपी शिक्षा गारंटी योजना एवं सर्व शिक्षा अभियान) ने ले ली है जिनके तहत स्कूली शिक्षा के समानांतर निम्न गुणवत्ता वाली कई शैक्षिक परतें बिछायी जा चुकी हैं। शर्त केवल यह है कि यह वैकल्पिक व्यवस्था केवल गरीब जनता के लिए खड़ी की जायेगी यानी दो तिहाई जनता के लिए जिसमें प्रमुखत: दलित, आदिवासी, अति पिछड़े, अल्पसंख्यक और विकलांग शामिल हैं और इन समुदायों में भी विशेषकर लड़कियां। इस नई वैश्वीकृत

बहु-परती शिक्षा नीति का छिपा हुआ एजेंडा देश की विशाल सरकारी स्कूल प्रणाली की गुणवत्ता गिराकर उसको इतना जर्जर बना देना था कि उसकी आम जनता में विश्वसनीयता ही खत्म हो जाए। तब गरीब लोग भी अपने बच्चों को वहां से निकाल लेंगे और निजी स्कूलों की तलाश करेंगे। हुआ भी ठीक यही। एक और बात, सरकारी स्कूल प्रणाली से 1970 के दशक से उच्च एवं मध्यम वर्गों ने जो महापलायन शुरू किया गया उस प्रक्रिया में राष्ट्रीय जीवनमें अंग्रेजी माध्यम के बढ़ते हुए प्रभुत्व को रेखांकित करने की जरूरत है। इसके चलते सरकारी स्कूल प्रणाली की गुणवत्ता बरकरार रखने के लिए आवश्यक राजनैतिक व सामाजिक रूप से प्रभावी आवाज भी लुप्त हो गयी।

आज पूर्व प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च व प्रोफेशनल स्तर की शिक्षा का बाजारीकरण करना सरकारी नीति बन चुकी है। नीति निर्माण की लगाम संसद व विधानसभाओं से खींचकर वैश्विक बाजार की ताकतें यानी विश्व बैंक की अगुआई में सक्रिय अंतरराष्ट्रीय वित्तपोषक संस्थाओं व देशी-विदेशी कारपोरेट घरानों को सौंपी जा रही है। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में तो खुलकर शिक्षा के हर पहलू के लिए सार्वजनिक-निजी सहभागिता और स्कूल वाउचर लागू करने की बात है। इसके साथ-साथ शिक्षा के जरिए वर्ग-भेद, जाति-भेद, धार्मिक कट्टरवाद, नस्लवाद्, पितृसत्ता, सामंती व गैर-तार्किक सोच, पिछड़ेपन आदि विकृतियों के खिलाफ लड़ाई आगे बढ़ाने के सरोकार गौण हो रहे हैं। शिक्षा, वैश्विक बाजार की ताकतों के हाथ में वर्चस्ववाद, शोषण, सांप्रदायिकता व विषमता फैलाने का हथियार बनती जा रही है।

## एक हकीकत

जी-8 (अमरीका, कनाडा, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, रूस, जापान आदि) के उच्च-विकसित देशों में अकूत संपदा व ताकत के अलावा एक और साझी बात है। उन सभी देशों में सार्वजनिक धन पर सुचारू रूप से चलने वाली सबको उपलब्ध पड़ोसी 'समान स्कूल व्यवस्था' है जिसके बगैर वे मुल्क वहां नहीं पहुंच पाते जहां वे आज पहुंच पाये हैं। (हाल में इन देशों में भी नव-उदारवादी नीतियों का असर दिखने लगा है।) यही बात स्कैंडेनेवियन मुल्कों पर भी लागू होती है। निजी स्कूल खोलना ओर इस स्तर पर फीस और कैपीटेशन चार्ज लेना पिछड़े मुल्कों की पहचान है। यह भारतीय 'राज्य' द्वारा अपनी संवैधानिक जवाबदेहियों से पल्ला झाड़ने की नीति का सबूत है। दरअसल, शिक्षा को

मुनाफे का जरिया मान लेने से ही तमाम विकृतियों के दरवाजे खुल जाते हैं। सार्वजनिक धन पर चलने वाली उच्च शिक्षा संस्थाओं में अमेरिका में 76 प्रतिशत, फ्रांस में 88 प्रतिशत, रूस में 89 प्रतिशत, कनाडा में 100 प्रतिशत और जर्मनी में भी 100 प्रतिशत विद्यार्थी पढ़ते हैं। इन विकसित मुल्कों की सरकारें ज्ञान सृजन, संप्रेषण व वितरण में बाजार की भूमिका पर अपने-अपने राष्ट्रहित में सचेत नियंत्रण रखती हैं लेकिन वही ताकतें भारत जैसे विकासशील देशों को बाजार की निर्बाधित और वर्ग-भेद पर आधारित ''च्वाइस'' यानी ''चयन के हक'' का भ्रामक पाठ पढ़ाती हैं। इसी तथाकथित चयन के हक का भ्रम फैलाकर देश का शासक वर्ग हर स्तर पर शिक्षा को वैश्विक बाजार में खरीद-फरोक्ष्त की वस्तु बनाने के कदम उठा चुका है। यह रणनीति ज्ञान-व्यवस्था पर उच्च वर्ग और उच्च वर्ण के वर्चस्व को बरकरार रखने की रणनीति है।

## शिक्षा का अधिकार और समान स्कूल प्रणाली का रिश्ता

नि:संदेह दिसंबर 2002 में हुए 86वें संविधान संशोधन का असली मकसद वैश्वीकरण के चलते 1990 के दशक में हमारी शिक्षा नीति व व्यवस्था में जो विकृतियां आईं थीं उनका वैधानीकरण करना था लेकिन तब भी इसके द्वारा 6-14 आयु समूह की मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा मिलना भारतीय इतिहास में एक ऐतिहासिक परिघटना है। इसके निम्नलिखित व्यापक निहितार्थ हैं:

1. प्रारंभिक शिक्षा का मौलिक अधिकार तभी सार्थक होगा जब इसे अन्य मौलिक अधिकारों के साथ जोड़कर दिया जाये। यानी ऐसी प्रारंभिक शिक्षा नहीं दिया जा सकती जो समानता, सामाजिक न्याय, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, मजहब चुनने की स्वतंत्रता या जीने के हक का उल्लंघन करे। इसके साफ मायने हैं कि पड़ोसी स्कूल की अवधारणा पर आधारित समान स्कूल प्रणाली के जरिए शिक्षा पाना कम-से-कम 6-14 आयु समूह के बच्चों का मौलिक अधिकार बन चुका है।
2. केवल ऐसी ही प्रारंभिक शिक्षा दी जा सकती है जो संविधान के अनुरूप एक लोकतांत्रिक, समतामूलक, धर्मनिरपेक्ष एवं प्रबुद्ध समाज के निर्माण के लिए कारगर हो। कोई भी शिक्षा व्यवस्था या पाठ्यचर्या जो ऐसे समाज के लिए सक्षम नागरिकता का निर्माण नहीं करती वह मौलिक अधिकार का उल्लंघन करेगी।

3. अनुच्छेद 21(क) के चलते किसी भी स्कूल द्वारा, चाहे वह सहायता विहीन निजी स्कूल ही हो, 6–14 आयु समूह से फीस या अन्य किसी भी प्रकार का शुल्क लेना गैर संवैधानिक होगा। अब निजी स्कूलों के पास केवल दो विकल्प बचे हैं– वे मुफ्त प्रारंभिक शिक्षा देने के लिए समाज से धन बटोरें या सरकार से अनुदान लें।

4. समतामूलक गुणवत्ता की प्रारंभिक शिक्षा देना राज्य की संवैधानिक जवाबदेही है जिससे बरी होने के इरादे से सरकार संसाधनों की कमी का बहाना नहीं कर सकती। संसाधनों के आवंटन में प्रारंभिक शिक्षा की तुलना में ऐसे किसी भी अन्य मद को प्राथमिकता नहीं दी जा सकती जो मौलिक अधिकार न हो। इसका निहितार्थ है कि यदि संसाधन की कमी है तो राज्य की जवाबदेही है कि वह राष्ट्रमंडल खेल–2010, कॉरपोरेट घरानों द्वारा लिए गये बैंक कर्जों की माफी एवं विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) के लिए सब्सिडी आदि पर रोक लगाकर प्रारंभिक शिक्षा के लिए निवेश करे। उपरोक्त में से कोई भी खर्च कॉरपोरेट भारत का मौलिक अधिकार के लिए नहीं है।

5. सर्वोच्च न्यायालय के उन्नीकृष्णन फैसले के अनुसार अनुच्छेद 41 के तहत प्रारंभिक शिक्षा के अलावा माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा (तकनीकी व प्रोफेशनल शिक्षा समेत) भी मौलिक अधिकार के दायरे में आते हैं लेकिन इस अधिकार को राज्य अपनी आर्थिक क्षमता की सीमाओं के मद्देनजर ही देगा। माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा को खासतौर पर मौलिक अधिकार के दायरे में लाना जन आंदोलन का तत्कालिक एजेंडा बनना चाहिए चूंकि इसके बगैर बेहतर करिअर और उच्च शिक्षा व प्रोफेशनल कोर्सों के सब दरवाजे बंद हैं। नि:संदेह, सामाजिक विकास का सवाल केवल करिअर और कोर्सों का सवाल नहीं है। लेकिन जब तक वर्तमान जनविरोधी पूंजीवादी विकास का खाका हावी है तब तक शिक्षा को आगे बढ़ने की उपलब्ध तमाम संभावनाओं से जोड़ना मौलिक अधिकार का मुद्दा तभी दलितों, आदिवासियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए विकास के दरवाजे खोल सकता है जब इन वर्गों के बच्चों को समान स्कूल प्रणाली के खाके में समतामूलक माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा पाने का मौलिक अधिकार मिल जाए। इस दृष्टि से अनुच्छेद 21(क) में संशोधन करके 18 वर्ष आयु तक के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का मौलिक अधिकार दिलाना और वह भी बिना किसी शर्त के, जनता की अगली लड़ाई होगी।

## शिक्षा के अधिकार और समान स्कूल प्रणाली पर नये हमले

विगत 2–3 वर्षों में वैश्विक बाजार की ताकतों के हौसले सब हदों को पार कर रहे हैं। इसलिए शिक्षा के अधिकार और समान स्कूल प्रणाली पर हो रहे निम्नांकित नये हमलों को पहचानना जरूरी हो गया है।

शिक्षा के अधिकार का विधेयक बनाने के लिए हाल में जो बहस चली है उसमें समान स्कूल प्रणाली और पड़ोसी स्कूल की अवधारणा को हाशिए पर धकेलने के लिए एक नया शगूफा छोड़ा गया–निजी स्कूलों में पड़ोस के कमजोर तबके के लिए 25 प्रतिशत आरक्षण का शगूफा। अचानक सारी बहस समान स्कूल प्रणाली और पड़ोसी स्कूल के महत्वपूर्ण मुद्दे से हटकर निजी स्कूलों के मालिकों की दिक्कतों, वहां के अभिजात माहौल में गरीब एवं पिछड़ी जातियों के बच्चों को आने वाली सांस्कृतिक व मनोविज्ञानी परेशानियों और ऐसे आरक्षण के लिए संसाधनों पर फोकस हो गयी। यह मुद्दा गौण हो गया कि यदि इस प्रावधान के अनुसार 25 प्रतिशत गरीब बच्चे पड़ोस से आएंगे तो जाहिर है कि 75 प्रतिशत फीस देने वाले संपन्न बच्चे पड़ोस से नहीं आएंगे, तो फिर यह बराबरी हुई अथवा खैरात, क्या संपन्न बच्चों से फीस लेना अनुच्छेद 21(क) का उल्लंघन नहीं होगा? इससे भी बड़ा सवाल तो यह है कि इस प्रावधान से कितने गरीब बच्चों को लाभ मिलने की उम्मीद हैं। आज प्रारंभिक स्तर पर निजी स्कूलों (मान्यता विहीन स्कूलों समेत) में दर्ज बच्चे कुल दर्ज संख्या के बमुश्किल 20 प्रतिशत हैं। यानी तमाम निजी स्कूलों की प्रारंभिक शिक्षा देने की क्षमता 6–14 वर्ष आयु समूह के कुल 20 करोड़ बच्चों में मात्र 4 करोड़ बच्चों की है। यदि निजी स्कूलों की इस क्षमता का पड़ोस के पच्चीस प्रतिशत कमजोर तबके के लिए आरक्षण कर दिया जाय तो इससे लाभान्वित होने वाले बच्चों की संख्या 1 करोड़ से अधिक नहीं हो सकती। तो शेष उन्नीस करोड़ बच्चों के मौलिक अधिकार का क्या होगा? जाहिर है कि विधेयक में 25 प्रतिशत आरक्षण के प्रावधान का न तो शिक्षा के अधिकार से कोई संबंध है, न समान स्कूल प्रणाली से और न ही 86वें संशोधन के अनुरूप शिक्षा प्रणाली के पुनःनिर्माण से। तब भी विचार यह है कि मौलिक अधिकार का सारा दारोमदार इसी 25 प्रतिशत आरक्षण में है, शायद इसीलिए क्योंकि इसके चलते शिक्षा के निजीकरण व बाजारीकरण की रफ्तार और तेज हो जाएगी। जून 2006 में योजना आयोग ने 11वीं पंचवर्षीय योजना का दृष्टिपत्र जारी किया। इसमें अचानक बगैर किसी शिक्षा विमर्श के स्कूल वाउचर प्रणली का

प्रस्ताव रखा गया। वाउचर प्रणाली क्या है? इसके अनुसार, कमजोर तबके के बच्चों को (कितने बच्चों को यह नहीं बताया जाएगा) बाउचर दे दिये जाएंगे जिसको लेकर ये बच्चे जिस भी निजी स्कूल में प्रवेश पा लें, उसकी फीस सरकार अदा कर देगी। यह कोई नहीं बता रहा कि क्या के वाउचर 20 करोड़ बच्चों को दिये जाएंगे और न ही यह बताया जा रहा है कि इन वाउचरों के जरिए किसी निजी स्कूल की फीस के कितने बड़े अंश का भुगतान किया जाएगा। कया यह वाउचर कैपिटेशन फीस, भवन विकास फंड और अभिजात तर्ज पर आयोजित वार्षिक पिकनिक/डांस के खर्च का भी भुगतान करेगा? और उस स्थिति में क्या होगा जब अलग-अलग निजी स्कूलों की फीस अलग-अलग होगी? यह भी कोई नहीं बता रहा कि वाउचर प्रणाली कई देशों में असफल हो चुकी है। हाल में कुछ लोग वाउचर प्रणाली की जगह निजी स्कूलों में 25 प्रतिशत आरक्षण का शगूफा छोड़कर मौलिक अधिकार की बहस को भ्रमित करने की कोशिश में हैं, जबकि ये निजीकरण की नीति के ही दो अलग-अलग नाम हैं। योजना आयोग की इस मुद्दे पर चुप्पी की एक ही व्याख्या हो सकती है-वाउचर प्रणाली निजी स्कूलों को पिछले दरवाजे से सरकारी धन उपलब्ध कराने और वैश्विक बाजार को संतुष्ट करने का नायाब तरीका है।

11वीं पंचवर्षीय योजना में स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में सार्वजनिक-निजी सहभागिता (पब्लिक-प्राईवेट पार्टनरशिप यानी पी.पी.पी.) की जमकर वकालत की गई है। उदाहरणार्थ, केंद्र की ओर से 6,000 मॉडल स्कूल खोलने का प्रवधान किया गया है। इस वर्ष के बजट में 650 करोड़ रुपये का आबंटन भी कर दिया है। इसमें से 2500 स्कूल पी.पी.पी. की परिपाटी में खोले जाएंगे। इनके लिए निजी एजेंसियों से टैंडर बुलवाये जाएंगे और इसकी घोषित स्कीम में जमीन, भवन निर्माण एवं उपकरण आदि के लिए पिछले दरवाजे से सरकारी धन उपलब्ध करवाया जाएगा। यह सब केवल मुट्ठी भर बच्चों के लिए किया जाएगा लेकिन 12 लाख स्कूलों में करोड़ों बच्चों को उम्दा शिक्षा देने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाए जाएंगे। शिक्षा के अधिकार विधेयक में भी इस निजीकरण को रोकने का कोई प्रावधान नहीं है, वरन् ऐसा करने की इजाजत है।

जैसा कि ऊपर बताया है कि विगत 15 वर्षों में वैश्वीकरण के तहत सरकारी स्कूल प्रणाली को ध्वस्त करने की नीति लागू की गयी। इसमें जब काफी सलता मिल गयी तो विश्व बैंक और बाजार की अन्य ताकतें विभिन्न सहचर गैर सरकारी एजेंसियों के

*जनता के सभी तबकों को समतामूलक व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए शासक वर्ग की राजनीतिक इच्छाशक्ति घटती गयी है। ऐसा करने में वैश्विक बाजार की ताकतों का छिपा हुआ एजेंडा भारत की विशाल सरकारी स्कूल प्रणाली (लगभग 12 लाख स्कूल) को ध्वस्त करना था ताकि उसकी जगह फीस लेने वाले निजी स्कूल ले सकें। इसी एजेंडे का दूसरा पहलू सरकार को शिक्षा के प्रति अपनी संवैधानिक जवाबदेही से बरी होने का मौका भी देना था*

जरिए तथाकथित शोध अध्ययन आयोजित करके ऐसे आंकड़े पैदा करवा रही हैं कि किसी तरह सिद्ध हो जाये (यानि भ्रम फैल जाए) कि सरकारी स्कूल एकदम बेकार हो चुके हैं और इनको बंद करना ही देश के हित में होगा। आये दिन रिपोर्ट (उदा. 'प्रथम' की एसर-2007 नामक रिपोर्ट) छप रही है यह बताते हुए कि सरकारी स्कूल कितने बदहाल हैं, सरकारी स्कूलों में शिक्षक नहीं हैं, यदि हैं तो वे पढ़ाते नहीं हैं और वहां जाने वाले विद्यार्थी न लिखना जानते हैं और न हिसाब करना। कोई रपट यह नहीं बताती कि इन स्कूलों के ये बदहाल कैसे हुए और इस प्रक्रिया में देश के शासक वर्ग एवं बाजार की ताकतों की क्या भूमिका रही है।

**कैसा भारत बनाया जा रहा है?**

वर्ष 2008-09 वर्ष के केंद्रीय बजट में कल के भारत का नजरिया साफ झलक रहा है। 6-14 आयु समूह के आधे से अधिक बच्चे प्रारंभिक शिक्षा (कक्षा 1-8) से वंचित हैं। इसके बावजूद इस उद्देश्य से चलाए जा रहे सर्व शिक्षा अभियान नामक एकमात्र कार्यक्रम के आबंटन में पिछले वर्ष की तुलना में कटौती की गई है। वर्ष 2007-08 के संशोधित बजट में 13, 171 करोड़ रुपये का आबंटन था जबकि वर्ष 2008-09 में अनुमानित बजट 13,100 करोड़ रुपये का है यानी मुद्रास्फीति की भी पूर्ति नहीं की गयी। इसके विपरीत माध्यमिक शिक्षा (कक्षा 9-12) के लिए आबंटन में वर्ष 2007-08 के संशोधित बजट के मुकाबले 2.8 गुणा की वृद्धि हुई। इसी तरह उच्च शिक्षा का आबंटन पिछले साल की तुलना में दुगुने से अधिक बढ़ाया गया है। दरअसल, माध्यमिक व उच्च शिक्षा का आबंटन पिछले साल की तुलना में दुगने से अधिक बढ़ाया

गया है। माध्यमिक व उच्च शिक्षा का आबंटन बढ़ाना एक सही कदम माना जाना चाहिए चूंकि शिक्षा के हरेक स्तर का संतुलित विकास हो, यह तमाम शिक्षक व विद्यार्थी संगठनों की पुरानी मांग रही है। लेकिन यहां दो बिंदुओं पर ध्यान देना जरूरी है। पहला, माध्यमिक व उच्च शिक्षा के आबंटन में बढ़ोतरी प्रारंभिक शिक्षा की कीमत पर की गयी है। इसका यह भी अर्थ हुआ कि शिक्षा के मौलिक अधिकार का विधेयक एक ढकोसला है। दूसरा, माध्यमिक व उच्च शिक्षा बजट में जो बढ़ोतरी हुई है उसका फोकस क्या है, यह समझना जरूरी है। माध्यमिक शिक्षा में बढ़ोतरी का एक प्रमुख हिस्सा विशेष श्रेणी के स्कूल शुरु करने के लिए है- जैसे केंद्रीय व नवोदय विद्यालय, कस्तूरबा बालिका विद्यालय और 6,000 नए मॉडल स्कूल। इसका फायदा केवल विशेष प्रकार से चुने गये मुट्ठी भर बच्चों को ही होगा, जबकि अधिकांश आम स्कूलों की उपेक्षा होगी। यानी कमजोर नींव पर मकान बनेगा। उच्च व तकनीकी शिक्षा में आबंटन की बढ़ोतरी का बड़ा कारण पिछड़े वर्ग को हाल में दिये गये 27 फीसदी आरक्षण से परेशान उच्च वर्णों के विरोध को संभालने के लिए मोइली समिति की अनुशंसा के अनुसार सामान्य वर्ग की सीटों में 54 फीसदी इजाफा करने के लिए सुविधाओं को बढ़ाने का दबाव है। इसके अलावा चंद विश्वस्तरीय विश्वविद्यालयों को बनाने के लिए अतिरिक्त आबंटन किया गया है लेकिन यह कदम भी माध्यमिक शिक्षा के मॉडल स्कूलों वाले सवालों के घेरे में आता है-कमजोर उच्च शिक्षा की नींव पर मकान बनाने का सवाल।

आखिरकार, बजट का लब्बोलुबाल क्या है? 11वीं योजना के दृष्टि पत्र में लिखा है कि भारत की शिक्षा के सामने सबसे बड़ी चुनौती वैश्विक बाजार के लिए कुशल कारीगरों की फौज तैयार करना है। इसका मतलब है कि संविधान एवं कोठारी आयोग अनुसार शिक्षा के जरिए, लोकतांत्रिक, समाजवादी, समतामूलक व धर्मनिरपेक्ष भारत के लिए सचेत नागरिकता निर्माण का उद्देश्य वैश्वीकरण के युग के भारतीय शासकों को मंजूर नहीं है। इनके लिए शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य वैश्विक बाजार की जरूरतों को पूरा करना ओर अधिकतम मुनाफा कमाना रहेगा। यही तो पूंजीवादी विकास का सिद्धांत है जिसके चलते समतामूलक सामाजिक विकास और राष्ट्र निर्माण के उद्देश्यों की बलि देने की पूरी तैयारी हो चुकी है।

जो आधे से अधिक बच्चे उम्दा शिक्षा से वंचित रह जाएंगे उन्हें महज साक्षर बनाया जाएगा ताकि वे वैश्विक बाजार के उत्पादों के लेबल व विज्ञापन पढ़ सकें और खरीदार

*2008-09 वर्ष के केंद्रीय बजट में कल के भारत का नजरिया साफ झलक रहा है। 6-14 आयु समूह के आधे से अधिक बच्चे प्रारंभिक शिक्षा (कक्षा 1-8) से वंचित हैं। इसके बावजूद इस उद्देश्य से चलाए जा रहे सर्व शिक्षा अभियान नामक एकमात्र कार्यक्रम के आबंटन में पिछले वर्ष की तुलना में कटौती की गई*

बन सकें। लगभग 30-35 फीसदी को 10वीं या 12वीं तक की मामूली स्तर की इतनी शिक्षा दी जाएगी ताकि वे नए कंप्यूटरीकृत कारखानों में तकनीशियन बनकर बाजार के लिए उत्पादन कर सकें लेकिन बाजार को आगे बढ़ाने के लिए ज्ञान का निर्माण भी जरूरी है। ज्ञान निर्माण के लिए केवल 10-15 फीसदी लोग काफी होंगे। उसके लिए माध्यमिक स्तर पर विशेष श्रेणी के स्कूल और उच्च शिक्षा के स्तर पर चंद विश्वस्तरीय विश्वविद्यालयों के टापू बनाने का काम शुरू हो गया है। इसके लिए गरीब बच्चों में से भी प्रतिभाओं को खोजा जाएगा। वे बच्चे जो गरीबी और जातीय पिछड़ेपन के बावजूद बाजार के पैमाने पर प्रतिभावान बन पाएंगे, वे असल में विलक्षण प्रतिभा के होंगे, और वैश्विक पूंजी को अपना मुनाफा बढ़ाने के लिए उनकी जरूरत होगी। इसलिए इस वर्ष से केंद्र ने माध्यमिक स्तर पर एक लाख छात्रवृत्तियों की घोषणाकर दी है जिन्हें चयन परीक्षा की दन्नी लगाकर उनके ही समाज से अलग कर दिया जाएगा यानी पिछड़े समाजों में सरोकार वाला प्रबुद्ध नेतृत्व विकसित होने की संभावनाएं खत्म कर दी जाएंगी। तो यह है इंसान को वैश्विक पूंजी के लिए उपयोगी संसाधन बनाने वाली और सेंसेक्स के निर्बाध मुनाफे की चकाचौंध पर टिकी हुई शिक्षा नीति का नया राजनैतिक अर्थशास्त्र।

## ज्ञान अर्थव्यवस्था का चरित्र

दरअसल, शिक्षा की मुख्य लड़ाई सिर्फ समतामूलक गुणवत्ता की शिक्षा सबको उपलब्ध कराने और इस मकसद से उसका निजीकरण व बाजारीकरण रोकने मात्र की नहीं है। असली लड़ाई तो शिक्षा में निहित ज्ञान के चरित्र-राजनैतिक, सामाजिक एवं सास्कृतिक-नियंत्रण पर है। आप तय कीजिए कि आप कैसा भारत और उसके जरिए कैसी दुनिया चाहते हैं और इसके निर्माण के लिए आप कैसी ज्ञान अर्थव्यवस्था विकसित करना चाहेंगे? ज्ञान के इस संघर्ष और निर्माण में भारत की जनता की क्या भूमिका होगी?

आज देश के विभिन्न अंचलों में वैश्वीकरण की मार सह रही मेहनतकश लेकिन गरीब जनता जल-जंगल-जमीन-जीविका के चार संसाधनों को अपने अस्तित्व के लिए आवश्यक मानकर संघर्ष कर रही है। इस संघर्ष में समतामूलक गुणवत्ता की शिक्षा और उसमें निहित ज्ञान को पांचवें संसाधन के रूप में जोड़ने के सवाल पर व्यापक विमर्श विकसित करने की जरूरत है।

इसी संघर्ष के जरिए संघर्ष के जरिए हम भारत की शिक्षा का पुनर्निर्माण आम जनता के हित में कर पायेंगे। तभी वैश्विक शांति के लिए- न कि वैश्विक बाजार द्वारा शोषण, मुनाफे और वर्चस्व बढ़ाने के लिए- जनोन्मुखी ज्ञान अर्थव्यवस्था खड़ी हो पाएगी। तभी संविधान निर्माताओं का भारत में लोक कल्याणकारी राज्य निर्माण करने और साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ाई आगे बढ़ाने के लिए एक आवश्यक शर्त के रूप में भारत की संप्रभुता का सपना साकार हो पाएगा।

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 15, अंक 2, अगस्त 2008

# ''भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्वतंत्रता एंव अनुशासन की अवधारणा''

**सुमित्रा सिंह* और मैथिली रमण प्रसाद सिंह****

भारतीय संस्कृति में शिक्षा को सर्वोच्च प्रतिष्ठा दी गयी है। ज्ञानम् मनुजस्य तृतीयं नेत्रम् अर्थात् ज्ञान ही मनुष्य का तीसरा नेत्र है। इसी तीसरे नेत्र का उन्मीलन और अन्तः ज्योति का प्रस्फुटन शिक्षा का अभिप्रेत है। शिक्षा मानव जीवन की अमूल्य निधि है और इसी का अवलम्ब लेकर एक संतुलित जीवन का मार्ग निर्मित किया जा सकता है।

भारत की शिक्षा प्रणाली में स्वतंत्रता एंव अनुशासन के पदों को हृदयंगम करने के लिए एक विस्तृत दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है जो कि ''सर्वे भवंतु सुखिनः और ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की भावना से संचालित होता है। यहीं स्पष्ट होता है कि मनुष्य को शिक्षा प्रदान करके सबके लिए कल्याणकारी बनाना है और वह इसी कल्याण, कामना के लिए स्वतंत्र है, क्योंकि''पापाय परपीडनम्'' कह कर उसे सजग और अनुशासित किया गया है।

भौतिक शरीर को स्वस्थ रखने के उपाय सुझाये गए क्योंकि यह दृश्य जगत का प्रमुख तंत्र रहा जिसे नियंत्रित करने के लिए अनेक यौगिक क्रियाओं का सहारा लिया गया। यहां तक कि श्वास-प्रश्वास को अनुशासित करने की चेष्टा की गयी।इस काल के तत्वद्रष्टा, महर्षियों ने विचारों तथा चिंतन को स्वतंत्रता प्रदान की और प्रकृति के व्यवहार में अनुशासन का दर्शन कर स्वयं को उच्च स्तरीय अनुशासन की परिधि में रखा। शिक्षा ही नहीं वरन् सम्पूर्ण जीवन के लिए स्वतंत्रता एवं अनुशासन की व्यापक उपलब्धता भारतीय शिक्षा की विशेषता रही।

---

* रीडर, शिक्षा विभाग, दीन दयाल उपाध्याय विश्व विद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश
** वरिष्ठ प्रवक्ता, शिक्षा विभाग, बी.आर.डी.पी.जी. कालेज, देवरिया, उत्तर प्रदेश

शिक्षा का प्रमुख कार्य स्वतंत्र मानवीय मस्तिष्क का निर्माण करना है क्योंकि सम्पूर्ण विकास के लिए स्वतंत्रता अनिवार्य है। शिक्षा के क्षेत्र में इस प्रकार की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि उसके योग्य मन-मस्तिष्क का निर्माण किया जाए। उचित व्यक्तित्व के निर्माण की प्रक्रिया के कारण जब स्वतंत्रता आहत होती है तो सकारात्मक नियंत्रण अथवा अनुशासन की उत्पत्ति होती है। चूंकि सीखने अथवा जानने की प्रत्येक क्रिया में शिक्षा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से विद्यमान होती है, अत: इसमें प्रत्येक स्तर पर स्वतंत्रता एवं अनुशासन के तत्व दृष्टिगोचर होते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न विचारों एवं मतों का प्रसार करने की दिशा में शिक्षाविदों एवं विचारकों की अग्रणी भूमिका रही है। इनके द्वारा प्रतिपादित मतों को समय-समय पर शिक्षा जगत में प्रयुक्त किया जाता रहा है। कभी सम्पूर्ण शैक्षिक व्यवस्था को दृष्टि में रखकर तो कभी उसके विशिष्ट पक्षों को ध्यान में रख कर प्रकट किये जाने वाले ये विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं और एक प्रकार से उस विशेष विचारक की पहचान बन जाते हैं। भारत की शिक्षा व्यवस्था पर इन विचाारों की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है।

भारत अनेक दार्शनिकों, विचारकों, विद्वानों की जन्मभूमि एवं कर्मस्थली के रूप में प्रख्यात है। इनके शैक्षिक विचारों ने भारतीय शिक्षा को ठोस आधार भूमि प्रदान की है। शिक्षा के क्षेत्र में योगदान करने वाले विभिन्न भारतीय मनीषियों के विचारों का स्वतंत्रताएवं अनुशासन के संदर्भ में विश्लेषण निम्नवत है :

### शंकराचार्य

शंकराचार्य के मत से विद्या वही है जो मुक्ति प्रदान करें। समस्त बंधनों से मुक्त करने वाली विद्या ही काम्य है। इसी से जिसने अपने आत्मा का स्वरूप जान लिया वह ज्ञानी होकर निर्द्वन्द विचरण करता है।यह मुक्ति अथवा स्वतंत्रता की चरम स्थिति कही जा सकती है जिसमें समस्त सांसारिक बंधनों का क्षय हो जाता है तथा कर्म का दबाव समाप्त हो जाता है।

शंकराचार्य के मतानुसार मानव जीवन का सर्वोच्च मूल्य आत्म साक्षात्कार है। हमारे सभी कार्यों का मूल्यांकन अंत में इसी मानदंड से होता है। नैतिक कार्यों को करने के लिए संयम अत्यावश्यक है। जब तक अन्त:करण चंचल रहता है तब तक कोई भी

व्यक्ति अपने सत्य स्वरूप को नहीं पहचान सकता है। मन को विभिन्न विषयों की इच्छाओं से रोकने के लिए इन्द्रियों का संयम आवश्यक है। विषयोंके साथ स्वच्छन्द विचरण करने वाली इन्द्रियां मन को अपने साथ खींच लेती हैं, इस प्रकार व्यक्ति में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। इसलिए अपनी इन्द्रियों पर संयम रखना मनुष्य का प्रथम कर्तव्य हो जाता है।

शंकराचार्य का चिंतन वेदांत पर आधारित है। वेदांत में बालक की प्रवृत्ति चार प्रकार की बताई गयी है। प्रथम अवस्था 'क्षिप्त' अवस्था है जिसमें बालक किसी भी कार्य में ध्यान नहीं लगा सकता। अध्ययन के लिए यह प्रतिकूल अवस्था है। द्वितीय ''विक्षिप्तावस्था'' है जिसमें अल्पकालिक अध्ययन संभव है। तृतीय अवस्था 'मुधा' की है जिसमें बालक की एकाग्रता शक्ति बढ़ जाती है किंतु आलस्य के कारण वह अध्ययन नहीं करता है। चतुर्थ अवस्था 'एकाग्रता' की होती है जिसमें इन्द्रियों, मन व बुद्धि सब पर आत्मा का नियंत्रण होता है। यही अनुशासन की स्थिति है। इसमें व्यक्ति नैतिक कार्यों को ही करता है, अनैतिक कार्यों पर पूर्ण नियंत्रण पा लेता है। शंकराचार्य के अनुसार नैतिक कार्यों का महत्व पुनर्जन्म हेतु भी है क्योंकि पुनर्जन्म के कर्म, विद्या, और प्रज्ञा के अनुसार ही अगला शरीर प्राप्त होता है और भोग भोगने पड़ते हैं।

नैतिक कार्यों का निर्धारण समाज की मान्यताओं के आधार पर भी होता है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जिस समाज में रहता है उसमें उसका एक पद होता है और उसको अपने पद के अनुसार ही कार्य करने पड़ते हैं। कर्तव्य व्यक्ति की स्वेच्छा या रूचि पर आधारित नहीं होते हैं। कुछ विशेष परिस्थितियों या दशाओं में एक निश्चित मार्ग स्वीकार करना पड़ता है।

शंकराचार्य का विचार है कि अनुशासित रहने के लिए जिस नैतिक क्षमता की आवश्यकता पड़ती है वह भारतवर्ष की प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था के कर्मों में निहित है। वर्ण और आश्रम के अंतर्गत निहित कर्तव्यों का पालन करने में स्वयं नैतिक शक्ति अर्जित होती है जिससे व्यक्ति संयमित और अनुशासन युक्त जीवन व्यतीत करता है। यही आत्मानुशासन है। अध्यापक, श्रुति, स्मृति, सामाजिक मान्यताएं आदि सभी विद्यार्थी का मार्ग दर्शन कर सकते हैं, परंतु अनुशासन को थोप नहीं सकते।

शंकराचार्य विद्यार्थी में ब्रह्म का वास मानते हैं। विद्यार्थी में दृढ़ संकल्प शक्ति होती है जिसके बल पर वह आत्म ज्ञान प्राप्त करता है। अत: उस पर किसी भी प्रकार का

दबाव नहीं डालना चाहिए वरन स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय लेने का अवसर प्रदान करना चाहिए। बालक में सत्यं, शिवं,सुन्दरं के अनन्त आदर्श कार्यशील हैं और जब तब वह इनको पूर्णत: प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक वह कुण्ठित रहता है। जैसे-जैसे वह पूर्णता की ओर अग्रसर होता है, वैसे-वैसे उसके आंनद का परिणाम बढ़ने लगता है और वह पूर्ण आनंद की स्थिति को प्राप्त कर लेता है। विद्यार्थी के समान ही समस्त संसार भी ब्रह्ममय है। अत: मानव को सृष्टि के सभी जीवों के प्रति दया, करूणा, ममता और सहानुभूति रखनी चाहिए। इसके लिए नैतिक अनुशासन अति आवश्यक है।

शंकराचार्य के अनुसार इस नैतिक अनुशासन को यौगिक क्रियाओं द्वारा भी प्राप्त किया जा सकता है। इनके सिद्धांतों के आधार पर ब्रह्मज्ञानी जीवन के किसी भी स्तर पर नैतिक नियमों का दुरूपयोग नहीं कर सकता। ब्रह्मज्ञान की साधना के समय वह नैतिक अनुशासन में इसलिए रहता है क्योंकि उसके बिना सफलता प्राप्त नहीं हो सकती तथा ब्रह्मज्ञानी होने के पश्चात् विपरीत आचरण की उसकी इच्छा ही नहीं रहती और वह दृढ़ प्रतिज्ञ हो जाता है और सन्मार्ग पर ही चलता है। इस प्रकार शिक्षक व शिष्य दोनों ही अनुशासन में रहते हैं।

**महर्षि दयानंद सरस्वती**

महर्षि दयानंद सरस्वती प्राचीन गुरूकुल व्यवस्था के प्रबल समर्थक थे। उनके अनुसार बालक को पूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करना चाहिए। इसके लिए गुरूकुलों में कठोर नियंत्रण की व्यवस्था होनी चाहिए। बालक का कोई भी कार्य विषय वासनाओं से संबंधित न हो। यहां तक कि उसको अपने माता-पिता से भी दूर रखा जाए जिससे मोह-माया किसी भी रूप में बालक के मन में न आ सके। महर्षि दयानंद के विचार से ब्रह्मचर्य की शिक्षा के लिए सर्वोत्तम स्थान विद्यालय ही है। वहां उसको इस प्रकार तैयार किया जाना चाहिए कि वह जीवन की विषम परिस्थिति में भी अपने को समायोजित कर सके। ब्रह्मचारी का जीवन, सैनिक जीवन के समान कठोर परिस्थितियों पर आधारित होना चाहिए, जो कड़े बिस्तर पर सोता है, रूखा-सूखा भोजन करता है और खराब मौसमों का सामना करता है। इसी प्रकार का जीवन व्यतीत करके वह समाज की पूर्ण इकाई बन सकता है।

महर्षि का विचार है कि विद्यार्थी अनुशासन का आचरण तभी कर सकते हैं जबकि शिक्षक उनके सामने अनुशासित जीवन व्यतीत करें। इसलिए शिक्षक व शिष्य दोनों के

लिए अनुशासन में रहना आवश्यक है। उनका कथन है कि शारीरिक अनुशासन के साथ-साथ मानसिक अनुशासन भी कायम रखना आवश्यक है। मानसिक अनुशसन के लिए वे योग को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। इससे मन व शरीर दोनों को गलत विचारों और वस्तुओं से बचाया जा सकता है। महर्षि की विचारधारा में अनुशासनहीन छात्रों के लिए दंड का भी विधान है।

कासंगज में स्थापित अपनी पाठशाला में निरीक्षण करके उन्होंने कुछ नियम निर्धारित किए जो उनकी विचारधारा को स्पष्ट करने में सहायक है :

(1) संध्या सिखाकर और बुद्धि की परीक्षा लेकर विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाए।

(2) अष्टध्यायी, महाभाष्य, मनुस्मृति और वेद पढ़ाए जाएं।

(3) पाठशाला में पढ़ाई नि:शुल्क हो और पाठशाला में रहने वाले छात्रों का भोजन भी नि:शुल्क हो।

(4) जो विद्यार्थी सूर्योदय से पूर्व उठकर संध्या न कर लें उन्हें सायंकाल की संध्या कर लेने के पश्चात ही भोजन दिया जाय।

(5) छात्रों को नगर में जाने की अनुमति न दी जाए परंतु सम्मानपूर्वक भोजन का निमंत्रण मिलने पर वे किसी अध्यापक के साथ जा सकते हैं।

महर्षि ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि हमारे देश में व्यक्ति परिश्रम नहीं करना चाहते हैं और आलस्य की मात्रा बढ़ गयी है। यदि देश को उच्च बनाना है तो प्रत्येक व्यक्ति को परिश्रमी होना चाहिए और छोटे-छोटे कार्यों के लिए दूसरों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए।

इस प्रकार महर्षि दयानन्द के अनुसार हमें सदैव दूरदृष्टि से काम लेना चाहिए और कठोर अनुशासन स्थापित करना चाहिए। इसके लिए हमें दंड देने से भी नहीं हिचकिचाना चाहिए।

**स्वामी विवेकानंद**

स्वामी विवेकानंद का विचार है कि किसी भी कार्य को करने के लिए शक्ति की आवश्यकता पड़ती है और शक्ति को प्राप्त करने के लिए मनुष्यों का सहयोग व सद्भाव आवश्यक है। सहयोग, आज्ञाकारिता और प्रेम के अभाव में शक्ति का केंद्रीकरण संभव नहीं है तथा

व्यक्तियों की शक्ति को एकत्रित किये बिना किसी भी महान कार्य को सम्पन्न नहीं किया जा सकता। अत:स्वामी जी मनुष्यों को ईर्ष्या और कपट की भावनाओं को दूर करने तथा एकजुट होकर कार्य करने का उपदेश देते हैं। उनके अनुसार एकता ही हमारे देश की आज सबसे बड़ी आवश्यकता है। इस शक्ति को प्राप्त करने के लिए दृढ़ चरित्र व अनुशासित जीवन आवश्यक है इसलिए शिक्षा प्रदान करने के गुरूतर कार्य के लिए भी शिक्षकों, प्राचार्यों तथा अन्य कर्मचारियों में भावात्मक एकता का होना आवश्यक है तथा सभी के लिए नैतिक अनुशासन की आवश्यकता है।

स्वामी जी का विचार है कि शिक्षक यदि स्वयं अनुशासित जीवन व्यतीत करेंगे तब छात्र भी उनका अनुकरण करेंगे। बालकों को किसी प्रकार का दंड नहीं देना चाहिए और न ही उन पर किसी प्रकार का अनुचित दबाव डालना चाहिए क्योंकि अनुचित दबाव डालने से बालक पर विपरीत मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है और उसकी रूचियां व क्षमताएं बाधित होती हैं जिसके कारण वह कार्य करने में, तन्मयता से सीखने में अक्षम रहता है। दबाव डालना शिक्षण कार्य में एक अनुचित परिणाम का संकेत करता है। इसको शिक्षण में स्थान नहीं दिया जाना चाहिए।

स्वतंत्रता, शिक्षण की प्रथम दशा है क्योंकि स्वतंत्र वातावरण में बालक की नैसर्गिक क्षमताओं के विकास का अवसर मिलता है और मूलत: जो नैतिक विशेषताएं उसमें छिपी होती हैं, वे अवसर पाकर स्वयं विकसित होती हैं और बालक स्वानुशासन से संयमित होता है इसलिए उस पर किसी भी प्रकार का कठोर नियंत्रण नहीं होना चाहिए। उनके अनुसार स्वानुशासन, अनुशासन का सर्वोत्तम रूप है।

### रविन्द्र नाथ टैगोर

रविन्द्र नाथ टैगोर की विचारधारा प्रकृतिवादी दार्शनिकों से अधिक साम्य रखती है। वे स्वतंत्रता पर बल देते हैं । उनका कथन है कि शिक्षा का ध्येय मस्तिष्क तथा आत्मा को स्वतंत्र बनाना है। इस लक्ष्य को हम स्वतंत्रता के मार्ग पर चलकर ही प्राप्त कर सकते हैं। यही अंतिम सत्य हो जो हमें आत्मा के प्रकाश की और प्रेम की दौलत देता है। उनके विचार से स्वानुशासन प्राप्त करने का यही एक मार्ग है जिसमें बालक को दिव्यता की अनुभूति हो। अनुशासन एक अनुभूति है जिसमें व्यक्तिगत उत्तरदायित्व की भावना भी सन्निहित होती है जिसके कारण व्यक्ति आचरण करते समय उचित व अनुचित का मूल्यांकन करता

है और समाज द्वारा मान्य व्यवहारों को ही करता है। इसके लिए समाज में उपयुक्त वातावरण का होना भी आवश्यक है जिससे मलिन विचार बालक में प्रवेश न कर सकें और उसका स्वभाव अच्छा हो सके।

रविन्द्र नाथ टैगोर अनुशासन में मुक्तिवादी सिद्धांत को मानने वाले हैं क्योंकि बालक अपने मस्तिष्क की जिज्ञासाओं को शांत करने के लिए पूर्ण स्वतंत्रता चाहता है। ये जिज्ञासाएं उन कोमल पौधों के समान है जो बड़ी आसानी से कुचले और तोड़े जा सकते हैं। बालक की मनोवृत्ति उन बन्धनों के विपरीत होती है जो उसकी स्वतंत्रता में बाधक होते हैं। इसलिए टैगोर कठोर और यातनापूर्ण अनुशासन के विरूद्ध हैं और उनका विचार है कि बलपूर्वक स्थापित अनुशासन अवास्तविक, अनुपयोगी और आचारहीनता को पोषित करता है और भयावह दुष्टता का जन्मदाता है।

टैगोर का विचार है कि बालक में शक्ति और ऊर्जा होती है जो उसको प्रदत्त दैवी उपहार है। बालक को निरंतर किसी कार्य में लगा होना चाहिए जिससे उत्तरदायित्व की भावना उसमें पनपेगी और स्वानुशासन स्थापित होगा। टैगोर पाश्चात्य दार्शनिक रूसों की भांति प्राकृतिक अनुशासन में विश्वास करने वाले थे, लेकिन साथ ही सुधारवादी भी थे। इसके लिए उन्हें आत्मदंड ही मान्य था जो कि भारतीय परम्परा में प्रायश्चित कहलाता है।

टैगोर ने अनुशासन की स्थापना में समाज को भी उत्तरदायी माना है। उनका विचार है कि कम आयु के बालकों के सम्मुख बुरे चरित्र के व्यक्ति नहीं आने चाहिए क्योंकि उस समय बालक अनुभवहीन होता है। जब उसमें आन्तरिक नियंत्रण की शक्ति उत्पन्न हो जाती है तब वह उन तत्वों का सामना कर सकता है और उनसे संघर्ष कर सकता है। उन्होंने अपने शांति निकेतन में इसी प्रकार का वातावरण रखा, जहां निरंकुश अध्यापकों द्वारा विद्यार्थियों पर दबाव नहीं डाला जाता। वहां किसी प्रकार के नियम, विधान नहीं हैं, वरन् बालक जीवन की विभिन्न क्रियाओं में कुशल होता हुआ अपने परिवार व राष्ट्र के लिए एक उपयोगी सदस्य बनता है। वहां बालक अपनी इच्छा से ही सब सीखता है। जो ि वद्यार्थी त्रुटियां करते हैं उनके दंड की व्यवस्था भी है लेकिन वह दंड अध्यापकों द्वारा नहीं दिया जाता वरन् विद्यार्थियों के निजी न्यायालयों द्वारा दिया जाता है। इसमें शारीरिक दंड की प्रथा नही है।

### मदन मोहन मालवीय

मालवीय जी के विचार से चरित्र गठन शिक्षा का प्राथमिक लक्ष्य है। चारित्रिक गठन के लिए नैतिकता अनिवार्य है । नैतिक आचरण की पुष्टि के लिए मालवीय जी धर्म एवं नागरिकता की शिक्षा को आवश्यक मानते हैं। उनकी धर्म की व्याख्या नैतिकता से ओत-प्रोत व नागरिकता से संबंधित है। उनका धर्म व्यापक विचारधारा रखता है, जिसमें मानव के व्यक्तिगत धर्म से लेकर देश धर्म तक सम्मिलित हैं। देशभक्ति के लिए दृढ़ चरित्र का होना परम आवश्यक है। इसलिए उसकी प्राप्ति के लिए मालवीय जी कठोर अनुशासन का समर्थन करते हैं। वे मानते हैं कि चरित्र निर्माण में शिक्षकों का विद्यार्थियों पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। अत:सर्वप्रथम शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह स्वयं अनुशासन में रहे तथा छात्रों से उसका पालन कराये।

धर्म और भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट-श्रद्धा रखने वाले मालवीय जी के अनुसार विश्वविद्यालय चरित्र विकास का साधन है। अपने विश्वविद्यालय के लिए स्थान का चयन करते समय भी उन्होंने भारतीयता को सर्वाधिक महत्व दिया और भारत की प्राचीन धर्म नगरी, काशी को सबसे अधिक उपयुक्त स्थल माना, उनके अनुसार धर्म चरित्र -निर्माण तथा सांसारिक सुख का सीधा मार्ग है। इससे मनुष्यों में उच्चकोटि की नि:स्वार्थ सेवा की भावना आती है जिससे समाज तथा राष्ट्र का कल्याण होता है। इस प्रकार उनके विचार से सामाजिक वातावरण विद्यार्थियों को श्रेष्ठ बनाने में सहायक होता है जिससे विद्यार्थी स्वानुशासन में रहना सीखेंगे। मालवीय जी कठोर अनुशासन तथा प्रभावात्मक अनुशासन को ही स्वीकार करते हैं। वह मुक्त्यात्मक अनुशासन के पक्ष में नहीं है।

### महर्षि अरविंद

महर्षि अरविंद शिक्षा, जीवन और अनुशासन में पारस्परिक समन्वय देखते हैं। शारीरिक स्वास्थय व शक्ति प्राप्त करने के लिए शारीरिक अनुशासन आवश्यक है तथा दृढ़ चरित्र के लिए नैतिकता परम आवश्यक तत्व है। इन शक्तियों की प्राप्ति में खेलकूद व व्यायाम की महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि इनके द्वारा शारीरिक शक्ति, उत्साह, संकल्प शक्ति तथा शीघ्र निर्णय शक्ति का विकास होता है। खेलों के द्वारा व्यक्ति में पारस्परिक सहिष्णुता, स्वस्थ प्रतियोगिता, आज्ञाकारिता जैसे महत्वपूर्ण गुणों का विकास अप्रत्यक्ष रूप से होता रहता है। जीवन के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जिस साधना की आवश्यकता होती है, उसका मार्ग खेलों द्वारा प्रशस्त होता है।

जीवन को अनुशासित करने के लिए महर्षि अरविंद योग साधना को अत्याधिक महत्व देते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी के लिए यह आवश्यक है कि वह अनुशासन में रहे। इसके लिए विद्यार्थी मनसा, वाचा तथा कर्मणा पवित्र हो और ब्रह्मचर्य का पालन करें। अनुशासन एक भावना से संबंधित है, जो नैतिकता से पूर्ण हैं अत: नैतिक शिक्षा के द्वारा अनुशासन स्थापित करना चाहिए। इसके लिए महर्षि अरविंद ने शिक्षक की भूमिका को सर्वाधिक महत्व दिया है।

शिक्षक का कर्तव्य है कि वह विद्यार्थियों में नैतिक भावना का संचीर करें। किसी भी प्रकार का बल प्रयोग अथवा दंड विद्यार्थियों में विरोधी भावनाएं उत्पन्न करेगा और वे उच्छृंखल हो सकते हैं आंतरिक अनुशासन की स्थापना के लिए विद्यार्थियों में स्वतंत्र विचार का अवसर तथा कार्य के लिए स्वतंत्र वातावरण प्रदान करना भी आवश्यक हैं। उनका विचार है कि कठोर नैतिक प्रशिक्षण, अनुशासन की भावना तथा आज्ञाकारिता वैयक्तिक स्वतंत्रता में बाधक नहीं हैं वरन् वैयक्तिक स्वतंत्रता के लिए प्रथम आवश्यकता है। जैसे नियमों की व्यवस्था स्वतंत्रता के लिए बाधक नहीं है वरन् स्वतंत्रता के उचित उपयोग के लिए आवश्यक है, उसी प्रकार अनुशासन भी स्वतंत्रता के लिए आवश्यक है। आंतरिक अनुशासन बाह्य अनुशासन से श्रेष्ठ है और इसके लिए उन्होंने प्राचीन भारतीय वर्णाश्रम व्यवस्था के पालन पर जोर दिया है। वर्णाश्रम धर्म का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है, जो अन्त: प्रेरणा द्वारा किया जाना चाहिए। श्री अरविंद के विचार से बालक सहज अनुकरण द्वारा जीवन में अनेक शिक्षाएं ग्रहण करता है। वह अपने माता-पिता, शिक्षक आदि निकट के व्यक्तियों के सम्पर्क से प्रभावित होता है,अत:आचार्य का पवित्र व उच्च होना परम आवश्यक है। स्पष्टत:महर्षि अरविंद अनुशासन के प्रभावात्मक सिद्धांत को स्वीकार करते हैं। कहीं-कहीं पर वह मुक्त्यात्मक सिद्धांत के समर्थक भी प्रतीत होते हैं, क्योंकि बालकों को यथासंभव कार्य एवं विचार करने की स्वतंत्रता प्रदान करते हैं।

**महात्मा गांधी**

गांधी जी के अनुशासन संबंधी विचार अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने अपना जीवन भी अनुशासन पूर्ण ढंग से व्यतीत किया। गांधी जी ने कभी दमनात्मक अनुशासन का समर्थन नहीं किया। उनका विचार था कि बालक प्रकृति से बुरा नहीं होता, वरन् प्राकृतिक व सामाजिक वातावरण उसे अच्छा या बुरा बनाते हैं। इसलिए प्राकृतिक

व सामाजिक वातावरण को उपयुक्त बनाकर छात्रों को अनुशासित रखा जा सकता है।उनके विचार से शिक्षक व विद्यार्थी चाहे कोसों दूर बैठे हों, अध्यापक द्वारा किये हुए कार्य का प्रभाव विद्यार्थी पर परोक्ष रूप से पड़ता है। अत: सर्वप्रथम शिक्षक का आचारवान होना परम आवश्यक है तभी हम छात्रों से अनुशासित रहने की आशा कर सकते हैं।

गांधी जी के अनुशासन संबंधी विचार सुधारवादी हैं। वह अनुशासनहीनता को एक व्याधि के समान मानते हैं जिसका उपचार किया जाना चाहिए और यह कार्य प्रेम व सहानुभूमि से ही संभव है; दमनात्मक रीति से या दंड के द्वारा नहीं। अत: विद्यालय का वातावरण स्वच्छ व पवित्र रखने का प्रयास करना चाहिए।

अनुशासन भगं हो जाने की स्थिति में पुन: अनुशासन की स्थापना के लिए गांधी जी ने सत्याग्रह के साधनों के प्रयोग पर बल दिया। इसमें आत्मिक पश्चाताप के लिए व्रत, उपवास का प्रावधान है और सर्वप्रथम शिक्षक अपनी आत्म शुद्धि के लिए प्रयास करता है क्योंकि वह स्वयं को भी अनुशासनहीनता का एक कारण मानता है। इस विधि का प्रयोग अत्यन्त दुरूह है तथा इसके लिए यह परम आवश्यक है कि विद्यार्थी की शिक्षक के प्रति असीम श्रद्धा हो और शिक्षक को विद्यार्थी के प्रति प्रेम व सहानुभूति हो। इससे संबंधित अनेक प्रयोग गांधी जी ने अपने जीवन में किया। अनुशासन स्थापित करने हेतु गांधी जी का एक सुझाव यह था कि छात्र किसी न किसी क्रिया में निरंतर लगे रहें, क्योंकि इससे वे अनावश्यक बातों की ओर ध्यान नहीं देंगे और सहयोगात्मक क्रिया होने पर उनमें प्रेम, सहानुभूति, मैत्री आदि के गुण स्वत: ही विकसित हो जायेंगे

इस प्रकार गांधी जी की धारणा के अनुसार अनुशासन स्थापित करने के लिए सर्वप्रथम शिक्षक का अनुशासित होना परम आवश्यक है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय दार्शनिकों एवं शिक्षाविदों ने प्रभावात्मक अनुशासन को प्रमुखता दी है। इसका का कारण यह है कि ये सभी प्राचीन भारतीय गुरुकुल शिक्षा-पद्धति को सर्वोच्च शिक्षा व्यवस्था मानते हैं। जिसमें शिक्षक व विद्यार्थी का निकट सम्पर्क रहता था तथा विद्यार्थी समस्त क्रियाकलापों को शिक्षकों के माध्यम से ही सीखता था। उस व्यवस्था में शिक्षक एक आदर्श व्यक्ति होता था। विद्यार्थीगण,

शिक्षक के जीवन से प्रशिक्षित होते थे, इसलिए उन पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में प्रभाव पड़ता था।

महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा मदन मोहन मालवीय ने प्रभावात्मक अनुशासन के महत्व को स्वीकार करते हुए कठोर नियंत्रण की संस्तुति की। टैगोर, विवेकानन्द और महर्षि अरविन्द जैसे विचारक विद्यार्थियों को स्वतंत्रता देने के पक्षधर हैं, जिससे वे अपनी योग्यता में वृद्धि कर सकें। इनका विचार है कि विद्यार्थियों पर अनावश्यक दबाव रखने से उनका मनोवैज्ञानिक विकास संभव नहीं होता है। किसी भी प्रकार की हीनता की भावना आने पर या कुण्ठाग्रसित हो जाने पर उसके परिणाम बाद में भयंकर हो सकते हैं जो विद्यार्थी को अपराधी बना सकते हैं इसलिए पर्याप्त स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।

महात्मा गांधी के क्रिया द्वारा अनुशासन की नवीन विधि को मान्यता दी क्योंकि विद्यार्थी जब सहयोगात्मक रूप से किसी कार्य में लगा होता है, तब उसमें स्वयं ही अनुशासन की भावना आ जाती है और वह सामाजिक गुणों से सम्पन्न हो जाता है।

अंत में हम कह सकते हैं कि आज जबकि स्वाधीनता के लगभग छः दशक बीत चुके हैं एक ओर हर क्षेत्र में विकास के नये प्रतिमान स्थापित किये गये हैं तो दूसरी ओर शैक्षिक तथा सामाजिक ढांचे में विकृतियां आई हैं। इनके मूल में स्वयं द्वारा अधिकारों के स्वतंत्र उपयोग की कामना तथा न्यूनतम कर्तव्यानुशासन की कामना है, परन्तु अपने अधिकारों का स्वतंत्र उपयोग तभी किया जा सकता है जबकि कर्तव्यों द्वारा अनुशासित होने की कला का ज्ञान हो।

शिक्षा के क्षेत्र में स्वतंत्रता एवं अनुशासन का सम्यक स्वरूप स्थापित करने के लिए शिक्षा-जगत एवं समाज के लोगों को अपना दृष्टिकोण बदलना होगा क्योंकि स्वतंत्रता एवं अनुशासन की अवधारणा सीधे-सीधे शैक्षिक एवं सामाजिक संतुलन के संबंधित है। स्वतंत्र विचारों वाले अनुशासित नागरिकों का निर्माण किस प्रकार किया जाय यह एक विचारणीय बिन्दु है जिसके लिए राष्ट्र की सम्पूर्ण शिक्षा-प्रणाली को प्रयास करना होगा क्योंकि यदि इनके मध्य समन्वय नहीं हुआ तो लोकतांत्रिक व्यवस्था को उससे आघात पहुंचेगा।

## संदर्भ

शर्मा, रामनाथ एवं राजेन्द्र कुमार – शिक्षा दर्शन

सिंह, सुमित्रा एवं मैथिलीरमण प्रसार–शिक्षा के विविध आयाम, भार्गव प्रकाशन, आगरा, 2004

गुप्त, एस.एन. दास–भारतीय दर्शन का इतिहास (खण्ड–एक) राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1988

सिंह राम स्वरूप नौलखा – आचार्य शंकर ब्रह्मवाद, किताब घर, आचार्य नगर, कानपुर, 1974

सहाय यदुवंश–महर्षि दयानन्द, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971

राव बी.के.आर.–स्वामी विवेकानन्द, गवर्नमेंट आफ इण्डिया पब्लिकेशन, 1979

सरकार भूपेन्द्र नाथ – टैगोर द एजकेटर, एकेडमी पब्लिशर्स, कलकत्ता, 1974

बनर्जी हीरम्य–बिल्डर्स आफ माडर्न इण्डिया, रवीन्द्र नाथ टैगोर पब्लिकेशन डिवीजन, मिनिस्टरी आफ इनफारमेशन एंड ब्राडकास्टिंग, 1971

श्री अरविन्दो एंड द मदर–ऑन एजुकेशन, श्रीअरविन्दो आश्रम ट्रस्ट, पांडिचेरी, 1974

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 15, अंक 2, अगस्त 2008

# प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों की प्रभाविता

**दीपा कृष्ण* और सरोज आनन्द****

**सारांश**

प्राथमिक शिक्षकों को सेवापूर्व एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान करने का दायित्व जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों का है। इन संस्थानों की स्थापना से लेकर आज तक लगभग 20 वर्षों में समय-समय पर अनुसंधानकर्ताओं द्वारा जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों की प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण में भूमिका, गुणवत्ता, स्थिति आदि उनके विषयों पर अध्ययन किये गये हैं। इसी संबंध में शोधकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों की प्रभाविता का अध्ययन विषय पर एक अध्ययन किया गया।

अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों की प्रभाविता उस अपेक्षित स्तर की नहीं है, जितनी की होनी चाहिए तथा इस संबंध में अनेक समस्याएं हैं, जिनमें स्टाफ की कमी, कार्यभार की अधिकता भौतिक एवं अकादमिक संसाधनों का अभाव, उच्च शैक्षिक योग्यता वाले शिक्षकों का अभाव, विभिन्न विभागों में समन्वय की कमी आदि प्रमुख समस्याएं हैं। जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों की प्रभाविता में वृद्धि हेतु उपरोक्त समस्याओं की समाधान के साथ ही अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इन संस्थानों के नीति निर्धारक अपनी नीतियों में कुछ महत्वपूर्ण आधारभूत परिवर्तन लाएं, जिससे इनकी प्रभावित को अपेक्षित स्तर तक लाया जा सके।

प्राथमिक शिक्षक-शिक्षा और प्रशिक्षण के गुणात्मक उन्नयन हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति

* प्रवक्ता, बी.एड., एल.एम.पी.वी. लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
** विभागाध्यक्ष, शिक्षा शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

(1986) के प्रावधानों के अंतर्गत भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा सम्पूर्ण देश में राज्य स्तर पर प्रत्येक जनपद में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की गई। यह संस्थान प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों को सेवापूर्व एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण देने के साथ-साथ अनौपचारिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा अभिकर्मियों का प्रशिक्षण जिला शिक्षा बोर्ड, ग्राम शिक्षा समितियों के सदस्यों का प्रशिक्षण तथा समुदाय के शिक्षाजगत से जुड़े अन्य सामग्री का निर्माण एवं प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में दिन-प्रतिदिन आने वाली व्यावहारिक समस्याओं के समाधान हेतु क्रियात्मक शोध भी जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों के दायित्व का महत्वपूर्ण अंग है।

उपरोक्त सभी दायित्वों को संस्थान सफलतापूर्वक पूर्ण कर सकें, इसके लिए प्रत्येक संस्थान में 7 विभाग स्थापित किये गये हैं:

1. सेवा पूर्व शिक्षक-शिक्षा विभाग
2. कार्यानुभव विभाग
3. जिला संसाधन एकक
4. सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण विभाग
5. पाठ्यक्रम सामग्री निर्माण एवं मूल्यांकन विभाग
6. शैक्षिक प्रौद्योगिकी विभाग
7. नियोजन एंव प्रबंधन विभाग

वर्तमान समय में जबकि जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान अपनी स्थापना के लगभग दो दशक से अधिक कार्यकाल पूर्ण करने जा रहे हैं, तब इन संस्थानों के संबंध में कुछ जिज्ञासापरक प्रश्न उभर कर आते हैं कि क्या ये संस्थान प्राथमिक शिक्षकों को गुणवत्तापूर्ण प्रशिक्षण प्रदान करने में सक्षम हैं, क्या इन संस्थानों में शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु उचित मात्रा में भौतिक एंव मानवीय संसाधन विद्यमान हैं? यदि ये संस्थान अपने दायित्वों की पूर्ति में सफल नहीं हो पा रहे हैं तो उसके क्या कारण हैं? तथा इन संस्थाओं की प्रभाविता में वृद्धि हेतु क्या- क्या उपाय किये जाने की आवश्यकता है। इन सभी प्रश्नों के समाधान हेतु संस्थानों की स्थापना से लेकर आज तक समय-समय पर अनुसंधानकर्ताओं एवं शिक्षा शास्त्रियों ने अनेक शोध अध्ययन किये हैं। इसी संबंध में शोधकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश में

प्राथमिक शिक्षक- प्रशिक्षण में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों की प्रभाविता का अध्ययन विषय पर अध्ययन किया गया जिसमें केवल लखनऊ मण्डल के 6 जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों (लखनऊ, सीतापुर, उन्नाव, रायबरेली, हरदोई एवं लखीमपुर) का नयादर्श के रूप में चयन करके उनका सर्वेक्षण किया गया। सर्वेक्षण में संस्थानों के प्राचार्य (6) शिक्षक-प्रशिक्षकों (50) तथा अध्ययनरत छात्राध्यापकों (269)से संस्थानों की वर्तमान वस्तुस्थिति को जानने के साथ-साथ विशेष रूप से उन समस्याओं को जानने का प्रयास किया गया जिनके कारण संस्थानों की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है तथा उन्हीं से वह सुझाव भी प्राप्त किये गये जिन्हें व्यवहार में लाकर जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों की प्रभावित में वृद्धि की जा सकती है।

न्यादर्श से प्रदत्तों के संकलन हेतु प्रश्नावली एवं साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया गया तथा परिणामों के निगमन हेतु प्रतिशत का प्रयोग किया गया। अध्ययन से प्राप्त प्रदत्तों का विश्लेषण एवं विवेचन निम्नांकित बिंदुओं के आधार पर किया गया:

1. जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों की वर्तमान वस्तुस्थिति;
2. जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों की प्राथमिक शिक्षक- प्रशिक्षण में प्रभाविता के संबंध में अनुभव की जाने वाली समस्याएं;
3. जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों की प्रभाविता में वृद्धि हेतु सुझाव।

जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों की वर्तमान वस्तुस्थिति के अन्वेषण में कुछ महत्वपूर्ण नकारात्मक एवं सकारात्मक तथ्य सामने आये वे इस प्रकार हैं: संस्थानों में शिक्षक-प्रशिक्षकों की कमी, शिक्षक- प्रशिक्षण एवं अन्य प्रायोगिक कार्यों हेतु आवश्यक संसाधनों की उपलब्धता कम, भौतिक संसाधनों की कमी, पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं हेतु आवश्यक सुविधाओं की कमी, पुस्तकालयों में संदर्भ ग्रंथों, प्रतियोगी परीक्षाा संबंधी साहित्य एवं उच्चस्तरीय पुस्तकों एवं पत्रिकाओं का अभाव, पाठ्यक्रम में सैद्धांतिक एवं प्रयोगात्मक पक्ष पर समान बल, शिक्षक-प्रशिक्षकों पर कार्यभार की अधिकता, पाठ्यक्रम निर्धारण एवं मूल्यांकन प्रक्रिया में शिक्षकों की भागीदारी न होना, शिक्षकों द्वारा अपने शिक्षण में नवाचारों एवं सहायक सामग्री का बहुधा प्रयोग न करना, अपने क्षेत्र से संबंधित शैक्षिक समस्याओं पर शोध करने हेतु संस्थानों को विभागीय सहयोग उचित रूप में प्राप्त न होना, शिक्षक-प्रशिक्षकों को भी अनुसंधान हेतु अपेक्षित

स्तर की सुविधाएं प्राप्त न होना, संस्थानों में सेमिनार एवं गोष्ठियों का आयोजन नियमित रूप से न किया जाना, सेमिनार, वर्कशाप, उच्च अध्ययन प्रशिक्षण एवं गोष्ठियों में भाग लेने हेतु शिक्षकों को अपेक्षित स्तर की सुविधाएं प्राप्त न होना, संस्थान के प्राचार्य, शिक्षक–प्रशिक्षकों एवं अन्य कर्मियों को समय पर वेतन की प्राप्ति न होना, अनुदान की कमी, संस्थानों की वार्षिक रिपोर्ट का नियमित रूप से प्रकाशित न होना आदि कुछ तथ्य जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों की गुणवत्ता में न्यूनता को प्रदर्शित करते हैं। जबकि संस्थानों द्वारा अपने वर्ष भर के कार्यक्रमों हेतु वार्षिक कलेण्डर स्वयं तैयार किया जाना तथा उसी के अनुसार संस्थान के समस्त कार्यों का सम्पादन, शिक्षकों पर कार्यभार की अधिकता होते हुए भी आदर्श शिक्षण करना, संस्थानों के पुस्तकालयों में विषय संबंधी पुस्तकों की उत्तम उपलब्धता, गुणवत्तापरक सेवाकालीन शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन, शिक्षकों द्वारा छात्रों को विधिपूर्वक शिक्षण –अभ्यास करवाना तथा कक्षा शिक्षण अभ्यास का नियमित पर्यवेक्षण किया जाना, त्रुटियों के संबंध में विस्तृत विचार विमर्श करना तथा सुझाव देना, संस्थानों की उत्तम अनुशासन व्यवस्था, शिक्षकों एवं प्राचार्य के बीच उत्तम संबंध, पाठ्यसहगामी क्रियाओं के आयोजन में शिक्षकों एंव छात्रों की रुचिपूर्ण भागीदारी, संस्थानों द्वारा छात्रों में नैतिक मूल्यों का विकास करके उन्हें आदर्श शिक्षक बनाने का प्रयास आदि कुछ ऐसे तथ्य ज्ञात हुए जो संस्थानों की प्रभाविता में वृद्धि को प्रदर्शित करते हैं।

संस्थानों की वर्तमान वस्तुस्थिति के अन्वेषण के पश्चात संस्थानों के प्राचार्य, शिक्षक–प्रशिक्षकों एवं छात्राध्यापकों से उन समस्याओं को भी जानने का प्रयास किया गया जो संस्थानों की प्रभाविता में अवरोध उत्पन्न करती हैं। उनके अनुसार कुछ प्रमुख समस्याएं इस प्रकार हैं:

1. शिक्षण स्टाफ की कमी,
2. एक सत्र में आवश्यकता से अधिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के आयोजन से शिक्षकों पर कार्यभार की अधिकता,
3. संस्थान में कार्यरत स्टाफ को वेतन एवं अन्य भत्ते समय पर उपलब्ध न होना,
4. निर्धारित शैक्षिक योग्यता वाले शिक्षकों की कमी,
5. कार्य की अधिकता के कारण अवकाश की कमी,

6. शिक्षकों को अतिरिक्त कार्य के लिये कोई अतिरिक्त मानदेय न प्राप्त होना,
7. बेसिक शिक्षा अधिकारी का संस्थान के कार्यों में हस्तक्षेप,
8. संस्थान के विभिन्न विभागों में समन्वय की कमी,
9. प्रवताओं को संस्थान के वरिष्ठ प्रवक्ता वर्ग से अपेक्षित सहयोग एवं निर्देशन न प्राप्त होना,
10. आकस्मिक कार्यों के कारण निर्धारित दायित्व की पूर्ति में बाधा,
11. डायट से बाहर के विभागीय प्रशिक्षणों की अधिकता एवं आवश्यकता से अधिक दिशा निर्देशों का होना,
12. आवश्यकता से अधिक विद्यालयों के निरीक्षण कार्य,
13. संस्थानों में भौतिक सुविधाओं की कमी,
14. शिक्षण-प्रशिक्षण संबंधी आवश्यक संसाधनों की कमी,
15. शिक्षकों का शिक्षण के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण एवं नवचारों के प्रयोग के प्रति उत्साह की कमी,
16. संस्थानों को प्राप्त होने वाला वित्तीय अनुदान असंतोषजनक,
17. संस्थान में विषय विशेषज्ञों का अभाव,
18. पाठ्यक्रम अधिक सैद्धांतिक, विस्तृत एवं नीरसतापूर्ण,
19. पुस्तकालय में उत्तम साहित्य का अभाव,
20. प्रशिक्षकों द्वारा रुचिकर शिक्षण न किया जाना।

संस्थानों की प्रभाविता में अवरोध उत्पन्न करने वाली समस्याओं को जानने के उपरांत संस्थान के तीनों वर्गों से वे समाधान पूछे गये जिनको व्यवहार में लाकर जिला शिक्षा-प्रशिक्षण में प्रभाविता में वृद्धि की जा सकती है। इस संबंध में संस्थान के प्राचार्य, शिक्षक-प्रशिक्षकों एवं छात्राध्यापकों ने अपने पृथक-पृथक सुझाव दिये। इस संबंध में विशेष रूप से यह कहा गया कि जिन पक्षों में समस्याएं हैं, उनको दूर किया जाए जैसे, शिक्षण स्टाफ की पूर्ति, भौतिक संसाधनों की उपलब्धता आदि। तीनों वर्गों द्वारा दिये गए सुझावों के आधार पर शोधार्थी द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया कि यदि प्राथमिक

शिक्षक-प्रशिक्षण में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों की प्रभाविता में वृद्धि करनी है तथा संस्थानों द्वारा प्रदान किये जाने वाले प्रशिक्षण में गुणात्मक उन्नति करनी है तो विशेष रूप से सुझाव उन नीति निर्माताओं को देने होंगे, जो जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों में संचालित होने वाले विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों हेतु नीतियों का निर्माण करते हैं। नीति निर्माताओं हेतु निम्नलिखित सुझाव प्रदान किये जा सकते हैं:

1. जिला शिक्षा एंव प्रशिक्षण संस्थानों में प्राचार्य, शिक्षक-प्रशिक्षकों एवं अन्य स्टाफ की नियुक्ति के संबंध में अलग कैडर बनाना चाहिए तथा इसके लिए आयोग को पृथक विज्ञप्ति के द्वारा योग्य पात्रों से आवेदन प्राप्त करने चाहिए तथा उन्हीं में से साक्षाात्कार एंव आवश्यक हो तो लिखित परीक्षा के द्वारा योग्य अभ्यर्थियों का चयन किया जाना चाहिए।
2. डायट के प्राचार्य एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों हेतु शैक्षिक योग्यता का निर्धारण किया जाना चाहिए शिक्षक-प्रशिक्षकों हेतु विषय विशेष में परास्नातक के साथ-साथ एम.एड. योग्यता निर्धारित होनी चाहिए।
3. डायट हेतु स्टाफ के चयन में यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि प्राचार्य एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों प्राथमिक स्तर की शिक्षा का कुछ अनुभव अवश्य रखते हों अर्थात चयन में उन्हें वरीयता दी जाए जो प्राथमिक स्तर पर शिक्षण का अनुभव रखते हों।
4. प्रत्येक संस्थान में शिक्षण स्टाफ की पूर्ति शीघ्रातिशीघ्र की जाये, जिसमें विशेष रूप से यह अवश्य ध्यान रखा जाये कि जिस संस्थान में जिस विषय विशेष के शिक्षक-प्रशिक्षकों की आवश्यकता हो, उन्हीं की नियुक्ति की जाय। इसके लिए समय-समय पर संस्थानों का सर्वेक्षण किया जाना चाहिए।
5. डायट में भौतिक, अकादमिक, मानवीय, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यसहगामी क्रियाओं संबंधी इत्यादि संसाधनों की उपलब्धता की जानकारी हेतु समितियों का निर्माण किया जाना चाहिए। ये समीतियां संस्थानों में उपलब्ध सुविधाओं का सर्वेक्षण करें तथा आवश्यकतानुरूप संसाधनों की पूर्ति की जानी चाहिए।
6. संस्थान में कार्यरत स्टाफ को वेतन एवं अन्य भत्ते समय पर उपलब्ध कराये जाएं।

7. बी.टी.सी. पाठ्यक्रम का पुनरावलोकन एवं पुनर्निरीक्षण किया जाना चाहिए तथा इसके निर्माण में प्राचार्य एवं शिक्षकों की सहभागिता सुनिश्चित की जानी चाहिए।
8. संस्थानों के विकास हेतु जो अनुदान राशि प्रदान की जाती है वह संस्थान की आवश्यकता एवं समय पर प्रदान की जानी चाहिए तथा उसके व्यय का पूर्ण ब्यौरा विभाग को प्राप्त करना चाहिए।
9. डायट के शिक्षक-प्रशिक्षकों हेतु जो पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं, उन्हें डायट में ही आयोजित किया जाना चाहिए।
10. शिक्षक-प्रशिक्षणार्थियों के मूल्यांकन हेतु सतत् मूल्यांकन प्रक्रिया आयोजित की जानी चाहिए तथा यदि संभव हो तो सेमेस्टर प्रणाली लागू की जानी चाहिए तथा मूल्यांकन में शिक्षकों की सहभागिता भी सुनिश्चित की जानी चाहिए।
11. डायट आदर्श रूप में प्रशिक्षण प्रदान कर रहे हैं अथवा नहीं इसकी जानकारी हेतु समय-समय पर आकस्मिक निरीक्षण किया जाना चाहिए तथा इस संबंध में प्रतिवेदन तैयार किया जाना चाहिए।
12. संस्थानों के प्राचार्य से संस्थानों की वार्षिक प्रगति का प्रतिवेदन अनिवार्य रूप से मांगा जाना चाहिए।
13. संस्थानों के प्राचार्य एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों को अपने क्षेत्र में विभिन्न समस्याओं के संदर्भ में क्रियात्मक शोध हेतु उच्चस्तरीय सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए।
14. अपने संस्थान के विकास एवं प्रभावित में वृद्धि करने वाले प्राचार्य एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों को उनके उत्कृष्ट योगदान हेतु पुरूस्कृत किया जाना चाहिए।
15. बी.एस.ए.तथा डायट प्राचार्य के दायित्वों में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए जिससे वे एक दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप न करें।
16. पाठ्यक्रम में कम्प्यूटर शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए।

17. संस्थान में एक बार नियुक्ति के पश्चात् कम से कम 3 वर्ष तक शिक्षकों का स्थानान्तरण नही किया जाना चाहिए तथा सत्र के मध्य में स्थानान्तरण पर प्रतिबंध होना चाहिए।
18. जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों को अधिक स्वायत्तता प्रदान की जानी चाहिए।
19. डायट में शोध विशेषज्ञों की नियुक्ति की जानी चाहिए।
20. डायट के निर्धारित दायित्वों के अतिरिक्त जो कार्यक्रम आयोजित किये जाने हैं उनके संपादन हेतु अलग स्टाफ की नियुक्ति की जानी चाहिए।

इस प्रकार यदि उपरोक्त सुझावों पर ध्यान दिया जाए तथा जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों की आधारभूत व्यवस्था में इनके आधार पर परिवर्तन लाकर निश्चित रूप से प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण में इन संस्थानों की प्रभाविता में वृद्धि की जा सकती है।

## संदर्भ

डिस्ट्रिक्ट इंस्टीट्यूट आफ एजुकेशन एंड ट्रेनिंग-गाइडलाइंस (1998) : गवर्नमेंट आफ इंडिया (मा.सं.वि.मं.) डिपार्टमेंट आफ एजुकेशन, नई दिल्ली।

डिस्ट्रिक्ट इंस्टीट्यूट आफ एजुकेशन एंड ट्रेनिंग : ए नेशनल एवाल्यूशन (ए ड्राफ्ट रिपोर्ट), स्कूल एंड नॉन फार्मल एजुकेशन यूनिट, न्यूपा, नई दिल्ली

मुखोपाध्याय, मर्मर (2002) : शिक्षा में संपूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन, राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन एवं प्रशासन संस्थान, 17-बी, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली।

नेशनल पॉलिसी आन एजुकेशन (1986) : मा.सं.वि.मंत्रालय, शिक्षा विभाग, भारत सरकार प्रकाशन, नई दिल्ली

राजपूत, जे.एस. (1994) : यूनिवर्सलाइजेशन ऑफ एलिमेंट्री एजुकेशन: रोल ऑफ टीचर एजुकेशन, विकास प्रकाशन, नई दिल्ली

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 15, अंक 1, अप्रैल 2008

# इस्लाम में निहित शैक्षिक संकल्पनाओं का सम्प्रत्यात्मक अनुशीलन

**आलोक गार्डिया* और अशफाक अहमदी****

**सारांश**

*इस्लाम के अनुसार ''इल्म (ज्ञान) वह जबरदस्त कुवत (ताकत) है जिनकी बदौलत इंसान अपनी जिन्दगी को फैलाता है और अपने वजूद को वुसअत (विस्तार) से हमकिनार (संवारता) करता है। फिर वह सिर्फ अपने ही बारे में नहीं सोचता और न ही सिर्फ अपने ईर्द-गिर्द ही देखता है बल्कि इन दायरों से आगे बढ़कर माजी (अतीत) में भी झाँकता है, हाजिर (वर्तमान) की रोशनी में मुस्तकब्विल (भविष्य) को भी समझने की कोशिश करता है और कायनात (संसार) की सारी उसअत (विस्तार) के बारे में भी गौरोफिक्र (चिन्तन) करता है।[1] इस्लाम के विषद अध्ययन के आधार पर ज्ञात होता है कि कुरआन एवं हदीस के माध्यम से शिक्षा की मूल परिभाषा एवं नवीन सम्प्रत्यों पर वृहद विचार प्रस्तुत किये गये है, साथ ही शिक्षा के नवीन ढांचागत अवधारणाओं एवं नवीन समस्याओं के संबंध में मत प्रकट किये गये हैं। जिनके बारे में बहुत कम पढ़ने को मिलता है इन्हीं कमियों को दूर करने हेतु प्रस्तुत लेख में शिक्षा के विभिन्न सम्प्रत्यों के प्रति इस्लाम के विचारों को प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।*

इस्लाम शिक्षा दर्शन का प्रमुख स्रोत कुरआन है। कुरआन का शाब्दिक अर्थ है 'पढ़ना'। कुरआन के अतिरिक्त इस्लाम शिक्षा दर्शन का इतिहास हदीसों में मिलता है। 'हदीस' ईशदूत हजरत मुहम्मद स0 के कथनों का संग्रह है। कुरआन व हदीस के अतिरिक्त

* प्रवक्ता, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी उत्तर प्रदेश 221010
** शिक्षा स्नातकोत्तर, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी उत्तर प्रदेश 221010

इस्लाम का शिक्षा सम्बन्धी इतिहास अन्य ग्रन्थों में भी मिलता है जिनका आधार कुरआन व हदीस ही है। अर्थात् कुरआन व हदीस को आधार मानकर ही टीकाकारों ने अलग-अलग विषयों पर अपने शब्दों में शिक्षा सम्बन्धी बातों का वर्णन एवं व्याख्या प्रस्तुत की है। कुरआन की निम्न आयत कुरआन का सम्पूर्ण परिचय देती है -

''यह कुरआन सर्वथा मार्गदर्शन है।''[2] (कुरआन)

इस्लाम दर्शन का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि मानवता के अनन्यतम इतिहास में ज्ञान की महत्ता का अत्यन्त विशद वर्णन इस्लाम दर्शन में दृष्टिगत होता है। वास्तव में ज्ञान का प्रसार करके, ज्ञान के प्रति लोगों को आकर्षित करके, ज्ञान का गौरव बढ़ाकर, ज्ञानियों को सम्मान देकर और ज्ञान का सम्मान न करने वालों की निन्दा करके इस्लाम दर्शन ने मानवता के समक्ष जो आदर्श प्रस्तुत किया है वह अवर्णनीय है। अल्लामा युसुफ करजावी लिखते है कि सम्पूर्ण कुरआन में ज्ञान प्राप्त करने से सम्बन्धित बातों का उल्लेख लगभग आठ सौ पचास (850) बार मिलता है। इस्लाम में जिस तरह ज्ञान को सम्मान प्रदान किया गया है उसी तरह ज्ञान प्राप्त करने में मददगार वस्तुओं को भी सम्मान दिया गया है। कुरआन में ईश्वर ने सबसे पहली सौगन्ध ली है वह 'कलम' के सन्दर्भ में है -

''सौगन्ध है कलम की और जो कुछ लिखते है''।[3] (कुरआन)

इस्लाम में ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने के साथ ही ईश्वर से ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रार्थना करने का भी वर्णन मिलता है। कुरआन में ईश्वर ने ईशदूत हजरत मुहम्मद स. को निम्न प्रार्थना सीखने की हिदायत दी है -

''और कहिए, ऐ मेरे रब मेरे इल्म (ज्ञान) में इजाफा फरमा।''[4] (कुरआन)

कुरआन के साथ ही साथ हदीसो में भी शिक्षा से सम्बन्धित बातों का कई जगहों पर उल्लेख मिलता है। प्रमुख हदीस ग्रन्थ जिनमें बुखारी, मुस्लिम, तिरमीजी, इब्नेमाजा एवं अबुदाउद में तो पूरा का पूरा अध्याय ही ज्ञान प्राप्त करने से सम्बन्धित बातों से पूर्ण है। ज्ञान प्राप्त सम्बन्धी कुछ हदीस निम्नवत् है :

''इल्म (ज्ञान) मोमिन का गुमशुदा माल है उसे जहाँ पाये अपना हक समझ कर ले लें। जो लोग इल्म व हिकमत को अपना गुमशुदा माल समझकर हासिल करेगें, वह हमेशा कामयाब रहेंगे।''[5] (हदीस)

''जो किसी इल्म (ज्ञान) की कोशिश में किसी रास्ते पर चला तो ईश्वर उसे जन्नत (स्वर्ग) के किसी रास्ते पर चला देता है और तालिबे इल्म (शिक्षार्थी) से खुश होकर फरिश्ते अपने पर बिछा देते है।''[6] (अहमद)

''सिखाओ लेकिन सख्ती से काम न लो क्योंकि सिखाने वाला सख्ती करने वाले से बेहतर होता है।''[7] (बहक्की)

''इल्म (ज्ञान) सिखाने का सदका (दान) माल देने के सदके (दान) से बेहतर है। बेहतरीन सदका (दान) ये है कि आदमी इल्म सीखे फिर अपने भाई को सिखायें।''[8] (इब्नेमाजा)

''वह मेरी उम्मत (मानने वालों) में से नहीं जिसने हमारे बड़ो की इज्जत नही की, हमारे छोटो पर शफकत (प्यार) नही की और हमारे आलिम (शिक्षक) के हक को अदा नहीं किया।''[9] (अहमद)

## इस्लाम के विभिन्न शैक्षिक पक्ष

लेख के प्रस्तुत भाग में प्राथमिक एवम् द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से शिक्षा की विभिन्न अवधारणाओं के प्रति इस्लाम के विचार प्रस्तुत किये गये है।

### प्रारम्भिक शिक्षा

इस्लाम में प्रारम्भिक शिक्षा का लक्ष्य सामान्य शिक्षा की आवश्यकताओं को पूरा करना एवं उच्चस्तरीय पाठ्यक्रमों को समझने के लिए पृष्ठभूमि तैयार करना रहा है।

इस्लामी शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत बालक को लिखने-पढ़ने की शिक्षा के साथ-साथ कुरआन के शुद्ध उच्चारण पर बल दिया जाता रहा है। कुरआन अरबी भाषा में होने के कारण एवं इस्लामी दैनिक जीवन की गतिविधियों में अरबी भाषा के विशेष प्रयोग होने के कारण इस भाषा पर विशेष रूप से बल दिया जाता है।

समय के साथ इस्लाम में प्रारम्भिक शिक्षा का स्वरूप भी बदलता रहा। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में अरबी के साथ उर्दू, हिन्दी, गणित, अंग्रेजी, नैतिक शिक्षा, विज्ञान, भूगोल, इतिहास आदि लगभग सभी विषयों का ज्ञान बालकों को प्रदान किया जा रहा है। प्रारम्भिक शिक्षा में बालक-बालिकाओं को एक साथ मदरसों, मकतबों, खानकाहों, दरगाहों एवं मस्जिदों में शिक्षा प्रदान की जाती रही है।

इस्लाम दर्शन में शिक्षा आरम्भ करने के लिए किसी संस्कार का उल्लेख नहीं मिलता है। यद्यपि मध्यकालीन मुस्लिम शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा आरम्भ करने के लिए 'बिस्मिल्लाह रस्म' प्रचलित थी जो सम्भवत: वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था के 'उपनयन संस्कार' एवं बौद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था के 'पबज्जा संस्कार' के प्रभाव स्वरूप रही होगी। वर्तमान इस्लामी शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा आरम्भ करने के लिए किसी संस्कार का प्रचलन नहीं है।

### उच्च शिक्षा

इस्लामी शिक्षा व्यवस्था में प्रारम्भिक शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य थी साथ ही साथ उच्च शिक्षा के प्रोत्साहन हेतु भी संकेत मिलते है। उच्च शिक्षा के अन्तर्गत भाषा, साहित्य, तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, विधि शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, वाणिज्य उद्योग आदि विषयों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। यद्यपि वर्तमान समय में इन विषयों ने आधुनिक रूप ले लिया है।

उच्च शिक्षा व्यवस्था में साहित्य के विद्यार्थियों को 'कामिल', तर्कशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र के विद्यार्थियों को 'फाजिल' और धर्मशास्त्र के विद्यार्थियों को 'आलिम' की उपाधियों से विभूषित किया जाता रहा है।[10]

मदरसों में उच्च शिक्षा के सन्दर्भ में हजरत कासिम ननौतबी कहते है कि मदरसों में शिक्षण का उद्देश्य न केवल बड़ी या छोटी धार्मिक पुस्तकों के पढ़ने पढ़ाने या अक्षरों को याद करवाने से है बल्कि उन्हें बौद्धिक, सांसारिक और शैक्षिक प्रशिक्षण देकर उनकी योग्यता को विकसित करना है जिससे वह एक आदर्श छात्र कहलाये और लोगो के सामने अपना एक आदर्श प्रस्तुत करें। इस प्रकार इस्लामी शिक्षा व्यवस्था में उच्च शिक्षा का एवम् उच्च शिक्षित व्यक्ति को अत्यन्त सम्मान प्रदान किया गया है।

### व्यावसायिक शिक्षा

यद्यपि प्रमुख इस्लामी साहित्य कुरआन व हदीसो में प्रत्यक्ष रूप से किसी व्यावसायिक शिक्षा का उल्लेख नहीं मिलता है। लेकिन व्यक्ति को किसी न किसी व्यवसाय को करने का आदेश अवश्य दिया है। इस सन्दर्भ में कुरआन का एक संदेश यह है कि –

''ऐ लोगो, जो ईमान लाये हो, जब पुकारा जाय जुमा के दिन नमाज के लिए तो अल्लाह के जिक्र की ओर दौड़ो और क्रय–विक्रय छोड़ दो। यह तुम्हारे लिए ज्यादा अच्छा

है। यदि तुम जानों फिर जब नमाज पूरी हो जाये तो धरती पर फैल जाओं और अल्लाह का फज्ल तलाश करो।''[11] (कुरआन)

समय के साथ ही इस्लामी शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत व्यवसायिक शिक्षा को सम्मिलित किया गया। परिणाम स्वरूप चिकित्साशास्त्र की शिक्षा, हस्तकलाओं की शिक्षा, कृषि शिक्षा एवं लघु उद्योग शिक्षा को पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया। वर्तमान समय में लगभग सभी व्यावसायिक विषयों की शिक्षा प्रदान की जा रही है।

**स्त्री शिक्षा**

इस्लाम ने पुरूषों के साथ-साथ स्त्रियों को भी शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य करार दिया है। इस सम्बन्ध में ईशदूत हजरत मुहम्मद सं. का कथन है- ''इल्म हासिल करना हर मर्द और औरत पर फर्ज (अनिवार्य) है।''[12]

इस्लाम ने स्त्रियों को पुरूषों के समान अधिकार प्रदान किया है, जैसा कि कुरआन का संदेश है- ''स्त्रियों का हक पुरूषों के बराबर है। वे किसी भी दशा में उनसे कम नहीं है और उन स्त्रियों का भी सामान्य नियम के अनुसार पुरूषों पर वैसा ही हक है जैसा कि पुरूषों का उन पर।''[13]

अल्लामा युसुफ करजावी स्त्रियों की शिक्षा के सम्बन्ध में लिखते है कि हजरत आइशा रजि. (पत्नी ईशदूत हजरत मुहम्मद) को तो इल्म व फज्ल में बुलन्द मकाम हासिल था। औरतो के अलावा बड़े-बड़े सहाबी (ईशदूत हजरत मुहम्मद के साथी) भी उनसे दीनी तालीम हासिल करने आते थे।''[14]

इस्लाम ने स्त्रियों की शिक्षा की जिम्मेवारी उनके संरक्षकों पर रखी है। इस सम्बन्ध में अल्लामा युसुफ करजावी लिखते है कि शौहर, औरत के तालीम का जिम्मेवार है, अगर शौहर तालीम का इंतजाम न करे तो औरत खुद से सीखने की कोशिश करेगी ये उसका कानूनी हक है। अख्लाकी हुदुद की पाबन्दी के साथ औरत घर से बाहर इल्म के लिए जाये तो मर्द पाबन्दी नहीं लगा सकता ।''[15]

इस्लाम ने दासियों की शिक्षा पर भी बल दिया है इस सम्बन्ध में ईशदूत हजरत मुहम्मद स. का कथन है- ''जिस शख्स के पास दासी हो वह उसको खूब तालीम दे, उम्दह तहजीब सिखाये फिर उसे आजाद करके उसकी शादी कर दे।''[16] (बुखारी)

अंतत: स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में अल्लामा युसुफ करजावी कहते हैं :-'एक मर्द

की तालीम की तो एक फर्द (एक व्यक्ति) की तालीम की, एक औरत की तालीम पूरे खानदान को तालीम से सराबोर किया।'[17]

### वयस्क शिक्षा

इस्लाम ने शिक्षा ग्रहण करने पर अत्यधिक बल दिया। सभी के लिए शिक्षा अनिवार्य की चाहे वह अवयस्क हो या वयस्क। इस सम्बन्ध में एक विद्वान ने ज्ञान वालों की महत्ता का वर्णन करते हुए लिखा है कि-''रूहे जमीं पर अहले इल्म की मिशाल सितारों की तरह है जिनसे लोग रहनुमाई (मार्गदर्शन) पाते हे अगर ये सितारे रूपोश (विलुप्त) हो जाये तो रास्ता पाने वालो के भटक जाने की सूरत पैदा होती है।''[18]

इस्लामी शिक्षा व्यवस्था में वयस्कों के लिए औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों माध यमों से शिक्षा प्रदान की जाती रही है। ईशदूत हजरत मुहम्मद स. के समय लोगों को मस्जिदे नबवी (इस्लाम का पहला मदरसा) और असहाबे सुफ्फा (एक स्थल) में वयस्क लोगों को लिखने-पढ़ने के साथ व्यावहारिक शिक्षा प्रदान की जाती थी तथा जो शिक्षा लोग ग्रहण करते थे उन्हें दूसरों तक पहुँचाने का निर्देश भी दिया जाता था।

ईशदूत हजरत मुहम्मद सं. ने वयस्कों की शिक्षा के लिए हर सम्भव प्रयास किये, जिसका एक उदाहरण यह मिलता है कि किसी युद्ध के मौके पर सत्तर (70) व्यक्ति गिरफ्तार हुए जिनको इस शर्त पर रिहा किया गया कि वह मक्का के दस-दस लोगों को लिखना-पढ़ना सिखायें।''[19]

इस तरह इस्लामी शिक्षा व्यवस्था में वयस्कों के शिक्षा प्रदान करने के कई माध्यम प्रचलित है। जिनमें मदरसो में साँयकालीन शिक्षा का प्रमुख स्थान है। मदरसे के अतिरिक्त मस्जिदों में भी वयस्कों के लिए शिक्षा की व्यवस्था होती है।

### पिछड़े वर्ग की शिक्षा

प्रमुख इस्लामी साहित्य 'कुरआन व हदीस' के संकेतो से यह तथ्य बिल्कुल स्पष्ट है कि इस्लाम ने सम्पूर्ण मानवता को एक समान अधिकार प्रदान किया है। यहाँ न कोई उच्च वर्ग का है न कोई निम्न वर्ग का वरन् सभी आपस में समान है । जैसा कि ईशदूत हजरत मुहम्मद स. का कथन है - ''सभी मनुष्य आदम की संतान है, आदम मिट्टी से बने थे इसलिए किसी जाति को किसी जाति पर प्रधानता नहीं, न अरब को गैर अरब पर और न गैर अरब जाति को अरब पर, न गोरे को काले पर न काले को गोरे पर। सभी जातियाँ एक बराबर है। ईश्वर के निकट श्रेष्ठ वह है जो ईश्वर से डरने वाला और अच्छे कर्म करने वाला हो।''[20]

इसलिए इस्लाम ने शिक्षा के सन्दर्भ में मानवता को जो संदेश दिये है वह सभी मनुष्यों पर समान रूप से लागू होते है। यद्यपि ईशदूत हजरत मुहम्मद स. के काल से पहले समाज में चारो ओर असमानताओं का साम्राज्य व्याप्त था। समाज में अनेक कु-प्रथाएँ - दास प्रथा, स्त्रियों को तुच्छ समझना, निर्धनों एवं कमजोरो पर अत्याचार आदि प्रचलित थी। ऐसे समय में ईशदूत हजरत मुहम्मद स. ने कुरआन के संदेशों एवं शिक्षाओं को लोगों तक पहुँचाया, उनको अच्छे कर्मो के प्रति उभारा तथा इस सम्बन्ध में कानून बनाकर लोगों में समानता स्थापित की, साथ ही शिक्षा को सभी के लिए अनिवार्य घोषित किया -

''ज्ञान प्राप्त करना मर्द व औरत दोनों के लिए अनिवार्य है।''[21] (हदीस)

अल्लामा करजावी अपनी किताब 'तालीम की अहमियत' में लिखते है कि इस्लाम में शिक्षा की अनिवार्यता का सबसे अधिक लाभ उन लोगों को मिला जो समाज में पिछड़े हुए, मजलूम (शोषित) हुकुक (अपने अधिकार) से महरूम थे जिनमें प्रमुख रूप से निध्न, अनाथ, दास और औरतें शामिल थी। इन सब तबकों को इस्लाम ने बुलन्द मकाम अता किया और मआशरे (समाज) में भी सरफराजी बख्शी।''[22] इस्लाम में समानता व शिक्षा की अनिवार्यता के परिणाम स्वरूप आगे चलकर यह शोषित वर्ग विलुप्त हो गया और बड़े-बड़े ज्ञानी, विद्वान व शासक इस वर्ग की नस्ल से पैदा हुए।

**पर्यावरण शिक्षा**

पर्यावरण शिक्षा के दृष्टिकोण से इस्लामी साहित्यों का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण इस्लामी शिक्षा एक विशेष पर्यावरण का निर्माण करती है। जिसमें रहकर व्यक्ति सफलतापूर्वक अपने सामाजिक, सांस्कृतिक, भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास द्वारा सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त करता है।

सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत इस्लाम ने व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने के लिए समाजसम्मत नियमों का निर्माण किया जिसे 'शरीअत' कहा गया। सांस्कृतिक वातावरण के अन्तर्गत नैतिकता, भाषा, प्रथाएँ, परम्पराएँ आती है, जिनसे मनुष्यों की पहचान होती है। इस्लाम ने इस सन्दर्भ में सभी मनुष्यो को एक सूत्र में बाँधा है जिनसे मानवता की एक जाति बनती है। प्राकृतिक वातावरण के सन्दर्भ में इस्लाम ने संतुलन बनायें रखने का संकेत दिया है।इस तरह इस्लाम ने पर्यावरणीय शिक्षा अप्रत्यक्ष रूप से प्रदान की है जबकि वर्तमान समय में इस्लामी शिक्षा में प्रत्यक्ष रूप से अलग-अलग विषयों के माध्यम से पर्यावरणीय शिक्षा प्रदान की जा रही है।

## स्वास्थ्य शिक्षा

इस्लाम में कुरआन व हदीसों के माध्यम से स्वास्थ्य की रक्षा के लिए निर्देश देने के साथ-साथ विभिन्न क्रिया-कलापों का समन्वय प्रस्तुत किया गया है। इस सन्दर्भ में ईश्वर ने कुरआन का परिचय इन शब्दों में कराया है - ''हम कुरआन से ऐसी चीज नाजिल (अवतरित) करते है जो कि यकीन करने वालों के लिए शिफा (राहत) और रहमत है।''[23]

ईशदूत हजरत मुहम्मद स. का इस सम्बन्ध में उपदेश है -दो नेमते (कीमती चीजे) इन्सान पर ऐसी है जिनमें अक्सर लोग गफलत (अनदेखी) कर जाते है। एक सेहत दूसरा फारिगुल बाली (खुशहाली)।''[24] दूसरी जगह आप ने फरमाया है कि ''कियामत (निर्णय दिवस) के दिन बन्दे से सबसे पहले प्रदान की गयी नेमतों (कीमती चीज) के बारे में सवाल किया जायेगा और यूँ कहा जायेगा कि क्या हमने (अर्थात् ईश्वर ने) तुम्हारे जिस्म को तन्दुरूस्त नहीं बनाया और तुम्हें आबे सर्द (ठण्डा पानी) से हमने सेराब (तरो ताजह) नहीं किया था।''[25]

इसलिए ईशदूत हजरत मुहम्मद स. ने लोगो को ईश्वर से निम्न प्रार्थना करने की हिदायत दी है - ''अल्लाह तआला से तुम फज्ल व आफियत तलब करो इसलिए कि सेहतमन्दी से बढ़कर कोई नेमत नहीं अता की गयी है।''[26]

इस्लामी शरीअत (कानून) में समस्त दैनिक क्रियाकलापों को ईशदूत हजरत मुहम्मद स. के बताये हुए तरीके के अनुसार करने पर बल दिया गया है। जिसे 'सुन्नत' कहते है। इस्लाम में इन तरीकों को पुण्य कार्य बताया गया है और वैज्ञानिको ने भी स्वास्थ्य की दृष्टि से इन्हें सर्वोत्तम कहा है। इसके अन्तर्गत सुबह जागने से लेकर रात के सोने तक समस्त दैनिक क्रिया कलाप आते है। इन दैनिक क्रियाओं में सबसे महत्वपूर्ण क्रिया नमाज और नमाज से पहले किया जाने वाला वुजु (हाथ, पैर, चेहरे का धोना) है।

इस्लाम ने स्वास्थ्य की महत्ता का वर्णन करने के साथ ही नशे की रोकथाम के प्रयास भी किये है। इस्लाम में इस सन्दर्भ में विस्तृत विवेचना की गई है और नशीले पदार्थो को 'हराम' कहकर मानव को इसका उपयेाग करने से रोका गया है। नशीले पदार्थो में सर्वाधिक शराब का उपयोग होता है। इस सन्दर्भ में ईशदूत हजरत मुहम्मद सण का उपदेश है - ''ईश्वर ने लानत (धित्कार) फरमायी है शराब पर, इसके पीने

वालो पर और पिलाने वालों पर और बेचने वालों पर, कशीद (निर्माण) करने वालो पर और कराने वालो पर।''[27]

## उपसंहार

इस्लाम शिक्षा के माध्यम से सर्वत्र समानता, सहयोग, बन्धुत्व, न्याय, प्रेम, सहानुभूति, आदर, सम्मान आदि भाव स्थापित किये जा सकते है। व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास सम्बन्धि समस्त दिशा निर्देश हमें इस्लाम में देखने को मिलते है,जो वर्तमान में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस्लामी शिक्षा के आदर्शवादी एवम् धार्मिक दृष्टिकोण से यह निष्कर्ष नही निकालना चाहिए कि इसमें दैनिक जीवन के लिए उपयेागी विषयों के अध्ययन का कोई महत्व नहीं है। इस्लाम में सभ्य सामाजिक जीवन के लिए उपयेागी विषयों के अध्ययन की केवल आज्ञा ही नहीं दी गयी है वरन कहीं-कहीं इन्हें अनिवार्य घोषित कर दिया गया है ।

शिक्षा के लोक व्यापीकरण हेतु इस्लाम में प्रौढ शिक्षा, पिछडे वर्गो की शिक्षा, स्त्री शिक्षा के लिए विशेष उपाय बताये गये है जो अनुकरणीय है।इस्लाम में स्वास्थ्य शिक्षा एवम् वर्तमान ज्वलन्त समस्या पर्यावरण संरक्षण पर भी जोर दिया गया है। निष्कर्षत: इस्लाम में शिक्षा के दृष्टिकोण से अनेक अमूल्य विचार देखने को मिलते है।इन विचारों के समेकन एवम् प्रचार द्वारा निश्चित रूप से शिक्षा की अनेक समस्याओं का समाधान प्राप्त किया जा सकता है एवम् शिक्षा सम्बन्धि निति निर्माण में सार्थक दिशा प्रदान की जा सकती है।

## संदर्भ

1. धर, प्रांज्जल (2007). शिक्षा की भूमिका और हमारा देश. कुरूक्षेत्र (सितम्बर). पृष्ठ 18-21 ।
2. मादूदी, अबुल आला (1998). अनुदित कुरआन मजीद. नई दिल्ली : इस्लामी साहित्य प्रकाशन. पृष्ठ-712.
3. वही. पृष्ठ-827.
4. वही. पृष्ठ - 447.
5. करजावी, अल्लामा युसुफ (2000). तालीम की अहमियत. नई दिल्ली : मरकजी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स. पृष्ठ-76.
6. कान्धलवी, मौलाना मोहम्मद युसुफ (1997). मुन्तखब अहादीश. नई दिल्ली : इदारह इशाअते दीनियात प्राइवेट लिमिटेड. पृष्ठ-307.

7. करजावी, अल्लामा युसुफ (2000). तालीम की अहमियत. नई दिल्ली : मरकजी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स. पृष्ठ – 139.
8. वही. पृष्ठ–130.
9. जकरिया, मौलाना मोहम्मद (2001). फजाइले आमाल. नई दिल्ली : मरकजी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स. पृष्ठ–11.
10. करजावी, अल्लामा युसुफ (2000). तालीम की अहमियत. नई दिल्ली : मरकजी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स. पृष्ठ–130.
11. कान्धलवी, मौलाना मोहम्मद युसुफ (1997). मुन्तखब अहादीश. नई दिल्ली : इदारह इशाअते दीनियात प्राइवेट लिमिटेड. पृष्ठ–309.
12. मौदूदी, अबुल आला (1998). अनुदित कुरआन मजीद. नई दिल्ली : इस्लामी साहित्य प्रकाशन. पृष्ठ–807.
13. करजावी, अल्लामा युसुफ (2000). तालीम की अहमियत. नई दिल्ली : मरकजी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स. पृष्ठ–18.
14. मौदूदी, अबुल आला (1998). अनुदित कुरआन मजीद. नई दिल्ली : इस्लामी साहित्य प्रकाशन. पृष्ठ–53.
15. करजावी, अल्लामा युसुफ (2000). तालीम की अहमियत. नई दिल्ली : मरकजी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स. पृष्ठ–130.
16. वही. पृष्ठ–131.
17. वही. पृष्ठ–35.
18. वही. पृष्ठ–14.
19. वही. पृष्ठ–18.
20. वही. पृष्ठ–96.
21. इमामुद्दीन, अबू मुहम्मद (1999). मानवता उपकारक हजरत मुहम्मद, नई दिल्ली. मधुर सन्देश संगम. पृष्ठ–21
22. करजावी, अल्लामा युसुफ (2000). तालीम की अहमियत. नई दिल्ली : मरकजी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स. पृष्ठ–18.
23. वही. पृष्ठ–69.
24. खान, सलीम (1989). इस्लामिक मूवमेण्ट. इलाहाबाद : इकरा प्रिन्टर्स. पृष्ठ–200.
25. वही. पृष्ठ–200.
26. वही. पृष्ठ–200.
27. वही. पृष्ठ–200.

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 15, अंक 2, अगस्त 2008

*शोध टिप्पणी/संवाद*

# सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की विशिष्ट सामाजिक अभिवृत्तियाँ

**सुधीर कुमार शर्मा* और नीतू शर्मा****

***सारांश***

*प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की विशिष्ट सामाजिक अभिवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करना है। विशिष्ट सामाजिक अभिवृत्तियों के अंतर्गत सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक दूरी, उदारवादिता, राष्ट्रीयता, सामाजिक क्रांति एवं अस्पृश्यता का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन हेतु प्रतिदर्श के रूप में जनपद अलीगढ़ (उ.प्र.) के माध्यमिक स्तर की कक्षा 11वीं एवं 12वीं में अध्ययनरत सामान्य एवं अनुसूचित जाति की 100-100 छात्राओं का चयन 'यादृच्छिकी विधि' द्वारा किया गया। इन छात्राओं की विशिष्ट सामाजिक अभिवृत्तियों का अध्ययन करके प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष निकाला गया है।*

व्यक्ति और समाज का द्वन्द्व बहुत पुराना है। व्यक्ति समाज में जन्म लेता है और समाज में ही अपनी सम्पूर्ण क्रियाएं करता है। व्यक्ति अपनी अंत:क्रिया एवं अन्य व्यक्तियों के सहयोग से ही आगे बढ़ता है। समाज के बिना व्यक्ति अपने आप में अपूर्ण होता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का आकार अंतत: समाज में ही रूपायित होता है। जैविकीय दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति अपने-आप में अद्‌भुत क्षमताओं का पुंज है। इन क्षमताओं की साथ अभिव्यक्ति समाज में, समाज के लिए, व समाज के द्वारा ही होती है। क्षमताओं की

* प्रवक्ता, शिक्षक शिक्षा संकाय, अलीगढ़ (उ.प्र.)
** प्रवक्ता, शिक्षक शिक्षा संकाय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

अभिव्यक्ति के लिए शिक्षा ही एकमात्र ऐसा कारक है जो किसी भी समाज और राष्ट्र का निर्माण करने के लिए मानव को आवश्यक ज्ञान, प्रयोजन की चेतना और विश्वास की भावना से ओत-प्रोत करके मानव जीवन को अर्थपूर्ण साधन प्रदान करती है।

मानव व्यवहार के निर्धारण एवं निर्देशन में अभिवृत्तियों की भी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। अभिवृत्तियां न केवल मनुष्य के व्यवहार को प्रभावित करती हैं अपितु उन्हें एक निश्चित दिशा भी प्रदान करती हैं। अभिवृत्तियों की सहायता से व्यक्ति अपने चारों ओर के परिवेश को समझता है और फिर उसी के अनुसार व्यवहार करता है। इस प्रकार सामाजिक नियंत्रण की दृष्टि से इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। वास्तव में अभिवृत्ति सामाजिक पर्यावरण के संपर्क में आने पर मन में किसी वस्तु, व्यक्ति आदि के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल प्रतिक्रिया करने की एक सुनिश्चित स्थायी प्रवृत्ति है।

## शोध अध्ययन का औचित्य

अभिवृत्ति एक सामाजिक प्रत्यय एवं एक मानसिक पहलू है। इसका संबंध सामाजिक परिस्थितियों में व्यवहार के मानसिक पक्ष से होता है। अतएव इसके माध्यम से व्यक्ति विशेष के व्यवहार का अध्ययन संभव होता है। इसलिये विभिन्न सामाजिक विज्ञानों, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र में इनको महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

अभिवृत्तियों पर अनेक अध्ययन हुए हैं: **फ्रैंच (1947)** ने अपने अध्ययन में पाया कि रूढ़िवादी अभिवृत्तियां उन व्यक्तियों में विकसित होती है, जो कम शिक्षित, कम बुद्धिमान तथा कम सूचना प्राप्त होते हैं। चरम रूढ़िवादियों में निम्न आत्म विश्वास, निम्न सामाजिक उत्तरदायित्व, निम्न प्रभुत्व तथा निम्न जागरण जैसी विशेषताएं सामान्य रूढ़िवादियों की अपेक्षा अधिक मात्रा में होती हैं।

**रोजनवर्ग (1958)** ने अपने अध्ययन से निष्कर्ष निकाला कि धनात्मक तथा निषेधात्मक अभिवृत्ति तथा अभिवृत्ति की तीव्रता का संबंध व्यक्ति के उन विश्वासों से होता है जो उसकी लक्ष्य प्राप्ति के नैमेत्तिक मूल्यों के प्रति होते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि अभिवृत्तियां पर्यावरण आधारित होती हैं। अत: शोधार्थी के मन में यह जिज्ञासा हुई कि क्या जाति का प्रभाव की अभिवृत्तियों के निर्माण पर

पड़ता है? इसी कारण शोधार्थी ने सामान्य व अनुसूचित जाति की छात्राओं की सामाजिक अभिवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया। साथ ही, अध्ययन में बालिका माध्यमिक विद्यालय की उच्चतर कक्षाओं में अध्ययनरत छात्राओं को ही सम्मिलित किया क्योंकि अभिवृत्तियाँ अनुभव के फलस्वरूप बनती हैं। अभिवृत्तियों के निर्माण में समय लगता है। अत: उनके निर्माण में आयु की परिपक्वता भी अनिवार्य है। माध्यमिक विद्यालयों की उच्चतर कक्षाओं में अध्ययनरत छात्राएं उत्तर किशोरावस्था की छात्राएं होती हैं, जो सामाजिक तथा सांवेगिक दृष्टि से भी परिपक्व हो जाती हैं। अत: इस आयु की छात्राओं की सामाजिक अभिवृत्तियों के प्रति निश्चित अभिवृत्ति बन जाती है। इसी कारण, सामाजिक अभिवृत्तियों के अध्ययन हेतु निम्नतर कक्षाओं के छात्राओं को न लेकर उच्चत्तर कक्षाओं की छात्राओं को लिया गया है।

**समस्या कथन**

''सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की विशिष्ट सामाजिक अभिवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन।''

**समस्या में प्रयुक्त शब्दों की परिभाषा**

- **सामान्य जाति :** वर्तमान शोध अध्ययन के संदर्भ में सामान्य जाति का अर्थ उन जातियों से लिया गया है, जो उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा तैयार एवं प्रकाशित अनुसूची में सम्मिलित नहीं की गई है।
- **अनुसूचित जाति :** वर्तमान शोध अध्ययन के संदर्भ में अनुसूचित जाति का अर्थ उन जातियों से लिया गया है जो उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा तैयार एवं प्रकाशित अनुसूची में सम्मिलित हैं। इसके अंतर्गत 66 जातियों को अनुसूचित जातियों में वर्गीकृत किया गया है।
- **सामाजिक अभिवृत्ति :** सामाजिक अभिवृत्ति किसी विशिष्ट विषय के प्रति व्यक्तियों की प्रवृत्तियों, पूर्वाग्रहों पूर्व निर्धारित विचारों का योग है। सामाजिक अभिवृत्तियों का निर्माण समाज की उत्तेजनात्मक परिस्थितियों के कारण होता है। इस प्रकार की अभिवृत्तियां एक समूह विशेष या व्यक्ति विशेष तक ही सीमित होती हैं। सामाजिक अभिवृत्तियां एक समाज के कुछ व्यक्तियों को छोड़कर उस समाज के सभी व्यक्तियों,

सामाजिक परिस्थितियों या समस्याओं के संबंध में होती है। सामाजिक अभिवृत्तियां अनेक प्रकार की होती हैं, परंतु प्रस्तुत शोधकार्य में निम्न 6 अभिवृत्तियों का अध्ययन किया गया है :

1. सामाजिका परिवर्तन
2. सामाजिक दूरी
3. उदारवादिता
4. राष्ट्रीयता
5. सामाजिक क्रांति
6. अस्पृश्यता

**शोध अध्ययन के उद्देश्य**

प्रस्तुत समस्या ''सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की विशिष्ट सामाजिक अभिवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन'' निम्नांकित उद्देश्यों पर आधारित है :

1. सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति के मध्य अन्तर की सार्थकता का अध्ययन करना।
2. सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की सामाजिक दूरी के प्रति अभिवृत्ति के मध्य अन्तर की सार्थकता का अध्ययन करना।
3. सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की उदारवादिता के प्रति अभिवृत्ति के मध्य अन्तर की सार्थकता का अध्ययन करना।
4. सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की राष्ट्रीयता के प्रति अभिवृत्ति के मध्य अन्तर की सार्थकता का अध्ययन करना।
5. सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की सामाजिक क्रांति के प्रति अभिवृत्ति के मध्य अन्तर की सार्थकता का अध्ययन करना।
6. सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की अस्पृश्यता के प्रति अभिवृत्ति के मध्य अन्तर की सार्थकता का अध्ययन करना।

**शोध अध्ययन की परिकल्पना**

1. सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है।

2. सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की सामाजिक दूरी के प्रति अभिवृत्ति के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है
3. सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की उदारवादित के प्रति अभिवृत्ति के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है
4. सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की राष्ट्रीयता के प्रति अभिवृत्ति के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है
5. सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की सामाजिक क्रांति के प्रति अभिवृत्ति के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है
6. सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की अस्पृश्यता के प्रति अभिवृत्ति के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है

## शोध अध्ययन की सीमाएं

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन में केवल अलीगढ़ जनपद में स्थित बालिका माध्यमिक विद्यालयों को सम्मिलित किया गया है
2. प्रस्तुत शोध अध्ययन में सामान्य जाति एवं अनुसूचित जाति के केवल 200 छात्राओं को सम्मिलित किया गया है जिनमें 100 छात्राएं सामान्य तथा 100 छात्राएं अनुसूचित जाति की सम्मिलित की गयी हैं।
3. प्रस्तुत शोध अध्ययन में केवल हिंदी माध्यम वाले माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं को ही न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया है।
4. प्रस्तुत शोध अध्ययन में में केवल अलीगढ़ जनपद में स्थित माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत 11वीं एवं 12वीं कक्षाओं की छात्राओं का चयन किया गया है।
5. प्रस्तुत शोध अध्ययन में अलीगढ़ जनपद के केवल निजी विद्यालयों को सम्मिलित किया गया है।

## शोध अध्ययन में प्रयुक्त विधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन में ''सर्वेक्षण या वर्णनात्मक विधि'' का प्रयोग किया गया है जो कि शैक्षिक अनुसंधानों में सर्वाधिक व्यवहार में आती हैं। सर्वेक्षण विधि द्वारा समस्या के वर्तमान कारकों का अध्ययन किया जाता है।

अत: प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए सर्वेक्षण विधि का चयन निम्न आधार पर किया गया है :

1. यह विधि समस्या के अनुकूल है।
2. समय व न्यादर्श चयन के लिये उपयुक्त है।
3. आवश्यक उपकरणों की उपलब्धता एवं उपयोगिता की दृष्टि से यह विधि व्यावहारिक है।
4. निर्देश की दृष्टि से यह विधि पर्याप्त क्षेत्र प्रस्तुत करती है।

**शोध अध्ययन के चर**

स्वतंत्र चर – जाति – (सामान्य जाति, अनुसूचित जाति)
कक्षा – (11वीं, 12वीं)

परतंत्र चर – विशिष्ट सामाजिक अभिवृत्तियाँ

**न्यादर्श का चयन**

प्रस्तुत शोध में न्यादर्श का चयन ''**यादृच्छिकी विधि**'' द्वारा किया गया है। न्यादर्श चयन करने के लिए जनपद अलीगढ़ के विभिन्न बालिका माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत उच्चतर कक्षाओं की (11वीं एवं 12वीं) की 200 छात्राओं का चयन किया गया। प्रत्येक विद्यालय से 25 सामान्य जाति व 25 अनुसूचित जाति की छात्राओं का चयन किया गया जिनका आयु वर्ग 16 से 20 वर्ष रखा गया।

**शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण**

परीक्षणों से वैध तथा विश्वसनीय परिणाम प्राप्त करने के लिये विश्वसनीय उपकरण का चयन करना आवश्यक होता है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य सामाजिक अभिवृत्तियों का अध्ययन करना है। अत: इसके लिए ''डा. नरेन्द्र सिंह चौहान'' एवं ''डा. सरोज अरोड़ा'' द्वारा निर्मित ''हमारे दृष्टिकोण'' नामक अभिवृत्ति मापनी का प्रयोग किया गया है। यह एक लिखित प्रश्नावली के रूप में है, जिसमें कुल 150 पद (25 पद प्रत्येक अभिवृत्ति के मापने हेतु) हैं।

## परीक्षण का प्रशासन

प्रस्तुत शोध अध्ययन में पूर्व वर्णित उपकरणों के प्रशासन एवं फलांकन के उपरांत जो प्राप्तांक प्राप्त हुए उनका विश्लेषण एवं स्पष्टीकरण क्रमबद्ध रूप से किया गया है। सर्वप्रथम शोधार्थी ने सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की अभिवृत्ति में अन्तर ज्ञात करने के लिये छात्राओं की अभिवृत्ति मापनी दी। अभिवृत्ति मापनी भरवाने के बाद शोधार्थी ने 6 विभिन्न अभिवृत्तियाँ- सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक दूरी, उदारवादिता, राष्ट्रीयता, सामाजिक क्रांति और अस्पृश्यता के प्राप्तांकों के अलग-अलग मध्यमान और प्रमाणिक विचलन निकाले और दोनों समूहों के मध्यमान एवं प्रमाणिक विचलनों के आधार पर t मान की गणना की।

इन सभी मानों को निम्नानुसार प्रदर्शित किया गया है-

**तालिका - 1**

**सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन**

| समूह | संख्या | मध्यमान | प्रमाणिक विचलन | t मान | सार्थकता स्तर | परिणाम |
|---|---|---|---|---|---|---|
| सामान्य जाति | 100 | 83.8 | 15.05 | 2.91 | 0.01 | सार्थक |
| अनुसूचित जाति | 100 | 89.9 | 14.52 | | | |

प्रस्तुत तालिका के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि सामान्य छात्राओं की सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान 83.8 तथा प्रमाणिक विचलन 15.05 है। और अनुसूचित जाति की छात्राओं का सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान 89. 9 तथा प्रमाणिक विचलन 14.52 है। इनका t का मान 2.91 है, जो कि सार्थकता स्तर 0. 01 पर सार्थक है अर्थात सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया है।

**तालिका - 2**

**सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की सामाजिक दूरी के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन**

| समूह | संख्या | मध्यमान | प्रमाणिक विचलन | t मान | सार्थकता स्तर | परिणाम |
|---|---|---|---|---|---|---|
| सामान्य जाति | 100 | 87.7 | 11.48 | 4.76 | 0.01 | सार्थक |
| अनुसूचित जाति | 100 | 95.8 | 12.86 | | | |

प्रस्तुत तालिका के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि सामान्य छात्राओं की सामाजिक दूरी के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान 87.7 तथा प्रमाणिक विचलन 11.48 है। और अनुसूचित जाति की छात्राओं का सामाजिक दूरी के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान 95.8 तथा प्रमाणिक विचलन 12.86 है। इनका t का मान 4.76 है, जो कि सार्थकता स्तर 0.01 पर सार्थक है अर्थात सामाजिक दूरी के संदर्भ में सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया है।

**तालिका - 3**

**सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की उदारवादिता के प्रति अभिवृत्ति के मध्य की सार्थकता का अध्ययन**

| समूह | संख्या | मध्यमान | प्रमाणिक विचलन | t मान | सार्थकता स्तर | परिणाम |
|---|---|---|---|---|---|---|
| सामान्य जाति | 100 | 44.6 | 14.39 | 2.13 | 0.01 | असार्थक |
| अनुसूचित जाति | 100 | 49.1 | 15.84 | | | |

प्रस्तुत तालिका के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि सामान्य छात्राओं की उदारवादिता के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान 44.6 तथा प्रमाणिक विचलन 14.39 है। और अनुसूचित जाति की छात्राओं का उदारवादिता के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान 49.1 तथा प्रमाणिक

विचलन 15.84 है। इनका t का मान 2.13 है, जो कि सार्थकता स्तर 0.01 पर सार्थक है अर्थात उदारवादिता के संदर्भ में सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं के मध्य असार्थक अन्तर पाया गया है।

**तालिका - 4**

**सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की राष्ट्रीयता के प्रति अभिवृत्ति के मध्य की सार्थकता का अध्ययन**

| समूह | संख्या | मध्यमान | प्रमाणिक विचलन | t मान | सार्थकता स्तर | परिणाम |
|---|---|---|---|---|---|---|
| सामान्य जाति | 100 | 51.2 | 15.69 | 5.81 | 0.01 | सार्थक |
| अनुसूचित जाति | 100 | 64.0 | 15.77 | | | |

प्रस्तुत तालिका के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि सामान्य छात्राओं की राष्ट्रीयता के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान 51.2 तथा प्रमाणिक विचलन 15.69 है। और अनुसूचित जाति की छात्राओं का राष्ट्रीयता के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान 64.0 तथा प्रमाणिक विचलन 15.77 है। इनका t का मान 5.81 है, जो कि सार्थकता स्तर 0.01 पर सार्थक है अर्थात राष्ट्रीयता के संदर्भ में सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया है।

**तालिका - 5**

**सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की सामाजिक क्रांति के प्रति अभिवृत्ति के मध्य की सार्थकता का अध्ययन**

| समूह | संख्या | मध्यमान | प्रमाणिक विचलन | t मान | सार्थकता स्तर | परिणाम |
|---|---|---|---|---|---|---|
| सामान्य जाति | 100 | 58.8 | 14.41 | 5.41 | 0.01 | सार्थक |
| अनुसूचित जाति | 100 | 69.2 | 13.12 | | | |

प्रस्तुत तालिका के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि सामान्य छात्राओं की सामाजिक क्रांति के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान 58.8 तथा प्रमाणिक विचलन 14.41 है। और अनुसूचित जाति की छात्राओं का सामाजिक क्रांति के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान 69.2 तथा प्रमाणिक विचलन 13.12 है। इनका t का मान 5.41 है, जो कि सार्थकता स्तर 0.01 पर सार्थक है अर्थात सामाजिक क्रांति के संदर्भ में सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया है।

**तालिका - 6**

**सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की अस्पृश्यता के प्रति अभिवृत्ति के मध्य की सार्थकता का अध्ययन**

| समूह | संख्या | मध्यमान | प्रमाणिक विचलन | t मान | सार्थकता स्तर | परिणाम |
|---|---|---|---|---|---|---|
| सामान्य जाति | 100 | 95.4 | 17.13 | 1.12 | 0.01 | असार्थक |
| अनुसूचित जाति | 100 | 92.7 | 17.32 | | | |

प्रस्तुत तालिका के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि सामान्य छात्राओं की अस्पृश्यता के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान 95.4 तथा प्रमाणिक विचलन 17.13 है। और अनुसूचित जाति की छात्राओं का अस्पृश्यता के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान 92.7 तथा प्रमाणिक विचलन 17.32 है। इनका t का मान 1.12 है, जो कि सार्थकता स्तर 0.01 पर सार्थक है अर्थात अस्पृश्यता के संदर्भ में सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं के मध्य असार्थक अन्तर पाया गया है।

## शोध के अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन में परीक्षण के उपरान्त प्राप्त अंकों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया जिसके फलस्वरूप अग्रांकित निष्कर्ष प्राप्त हुए :

1. अनुसूचित जाति की छात्राओं की सामाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति सामान्य छात्राओं से अधिक होती है।

**चित्र-1**

**सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की सामाजिक अभिवृत्तियों का मध्यमान प्रदर्शित करता हुआ रेखाचित्र**

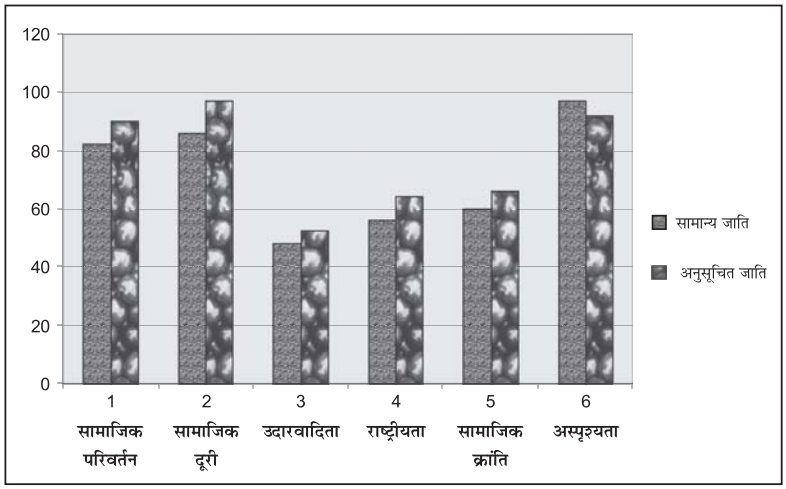


**चित्र-2**

**सामान्य एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की सामाजिक अभिवृत्तियों का प्रमाणिक विचलन प्रदर्शित करता हुआ रेखाचित्र**

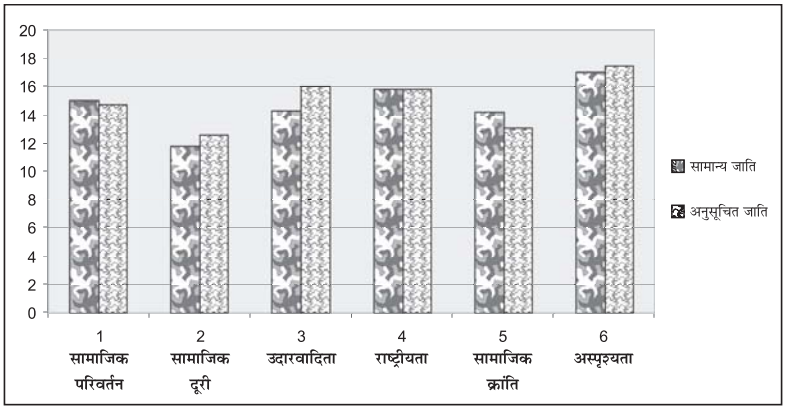

2. अनुसूचित जाति की छात्राओं की सामाजिक दूरी के प्रति अभिवृत्ति सामान्य छात्राओं की तुलना में अधिक होती है।
3. अनुसूचित जाति एवं सामान्य जाति की छात्राओं की उदारवादिता लगभग समान रूप से पायी जाती है।
4. अनुसूचित जाति की छात्राओं में राष्ट्रीयता की भावना सामान्य छात्राओं की अपेक्षा अधिक पायी जाती है।
5. अनुसूचित जाति की छात्राओं में सामाजिक क्रांति के प्रति अभिवृत्ति सामान्य छात्राओं की तुलना में अधिक होती है।
6. अनुसूचित जाति एवं सामान्य जाति की छात्राओं में अस्पृश्यता की भावना लगभग समान रूप से पायी जाती है।

**भावी शोध अध्ययन हेतु सुझाव**

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन केवल 200 छात्राओं के न्यादर्श पर किया गया है। अत: यह अध्ययन इसी क्षेत्र में बड़े न्यादर्श पर किया जा सकता है।
2. प्रस्तुत शोध अध्ययन केवल माध्यमिक विद्यालयों के कक्षाओं में अध्ययनरत छात्राओं पर किया गया है। अध्ययन को अधिक विश्वसनीय एवं वैध बनाने के लिए यह अध्ययन स्नातक व परास्नातक कक्षाओं की छात्राओं पर भी किया जा सकता है।
3. इस अध्ययन में न्यादर्श के लिए केवल छात्राओं को लिया गया है। भावी शोधार्थी छात्रों पर भी अध्ययन कर सकते हैं।
4. प्रस्तुत शोध कार्य में केवल एक चर 'अभिवृत्ति' को लिया गया है। आगामी शोध कार्य एक से अधिक चरों को लेकर किया जा सकता है।
5. इस शोध अध्ययन को उच्च व निम्न आर्थिक वर्ग पर भी किया जा सकता है।
6. इस शोध अध्ययन में छात्र एवं छात्राओं का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है।
7. प्रस्तुत अध्ययन केवल 6 अभिवृत्तियों पर किया गया है। इसी प्रकार अन्य अभिवृत्तियों पर भी यह अध्ययन किया जा सकता है।

## संदर्भ


अग्रवाल, आई.पी. (1988) : '*स्टेटिस्टिक्स मैथड्स कन्सेप्ट्स एप्लीकेशन एंड कम्प्युटेशन*' स्ट्रलिंग पब्लिशर प्रा. लि., नई दिल्ली।

आलपोर्ट, जी. डब्ल्यू (1937) : पर्सनेलिटी : '*साइकोलॉजिकल इंटरप्रिटेशन हॉल्ट एंड कम्पनी*, न्यूयार्क।

ओझा, एच. एवं ओझा एस.एस, (1970) : '*जनरल ऑफ साइकोलॉजी*'' वॉल्यूम-4

कपिल, एच.के. (2005) : ''*सांख्यिकी के मूल तत्व*'', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

करलिंगर, एफ.एन (1978) : ''*फाउण्डेशन ऑफ विहेवियर रिसर्च*'', न्यूयार्क यूनिवर्सिटी, सुरजीत पब्लिकेशन्स, कमला नगर, दिल्ली।

कार्टर, बी. गुड, बार, ए.एस. एंड स्केट्स, डी.ई. : ''*मैथेलॉजी एंड एजूकेशनल रिसर्च*'', न्यूयार्क।

गुप्ता, जी., (1976) : ''*फैमिली एंड सोशल चेंज इनमॉर्डन इंडिया*'', विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., नई दिल्ली

गैरिट, एच. ई. (1967) : ''*स्टेटिस्टिक्स इन साइकोलॉजी एंड एजूकेशन*'', वाकील्स केफर एंड सीमेन्स प्रा. लि., बंबई

चौबे, एस.पी., ''*शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार*'', विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।

थर्स्टन एंड चैव, ई.जे. (1929) : ''द *मेजरमेंट ऑफ एटीट्यूट*'', शिकागो।

बुच, एम.बी. (1983) : ''*थर्ड सर्वे एजुकेशन*'', एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली

बुच, एम.बी. (1988-92) : ''*फिफ्थ सर्वे ऑफ एजूकेशनल रिसर्च*'' वाल्यूम-2

रथ, आर. एवं सहयोगी, (1960) : ''*जनरल ऑफ सोश साइकोलॉजी*''

राय, पारसनाथ (2005) : ''*अनुसंधान परिचय*'' आगरा प्रकाशन, आगरा।

शर्मा, आर.ए. (2006) : ''*शिक्षा अनुसंधान*'', आर.लाल. बुक डिपो, मेरठ।

श्रीवास्तव, डॉ. डी.एन., (द्वितीय संस्करण) : ''*अनुसंधान विधियाँ*'', साहित्य प्रकाशन, आगरा।

*इंडियन साइकोलॉजिकल एवस्ट्रेक्टस*, वॉल्यूम-1, नं.-5, (सितंबर-अक्टूबर)-1972

जाइप - ''*जनरल ऑफ द इंडियन ऐकेडमी ऑफ एप्लाइड साइकोलॉजी*'' वॉल्यूम-24, नंबर-1,2 (जनवरी)-1998

श्रीवास्तव, एस.के. ''*इंडियन जनरल ऑफ एजूकेशनल रिसर्च*'', वॉल्यूम-21 नंबर-2, (जुलाई-दिसंबर)-2002

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 15, अंक 2, अगस्त 2008

*शोध टिप्पणी/संवाद*

# उत्तर प्रदेश की उच्चतर प्राथमिक स्तर पर संस्कृत की पाठ्य पुस्तकों में वर्णित मानव मूल्यों का अध्ययन

**रमेश कुमार***

***प्रस्तावना***

हर समाज और राष्ट्र की एक संस्कृति होती है। संस्कृति निश्चित मूल्यों पर आधारित होती है। उन मूल्यों की रक्षा और विकास ज्ञान–विज्ञान के निरंतर संशोधन से ही संभव होता है। कारण यह है कि विभिन्न देशों की संस्कृतियाँ हवाओं की तरह संक्रमण करती हैं। इस संक्रमण में जो संस्कृति दुर्बल होती है, वह पराजित होकर बाह्य प्रभावों को अंगीकार कर लेती है और उसके जीवन–मूल्य धीरे–धीरे क्षयग्रस्त हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें पहचानना भी कठिन हो जाता है। फल यह होता है कि उस जाति या समाज का विकास रूक जाता है तथा कभी–कभी इतना ह्रास होता है कि उस पराजित जाति या समाज का सांस्कृतिक अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। अत: शिक्षा के द्वारा ही निरंतर जातीय संस्कृति की सुरक्षा करनी होती है, जो मानव मूल्यों के अस्तित्व पर निर्भर होती है।

16वीं शताब्दी के बाद से अलौकिक सत्ता एवं धर्म के स्थान पर मानव ही स्वयं मानवीय विचारों का केंद्र हो गया। मानव को केंद्र में रखकर ही अब मूल्य मीमांसा की सार्थकता जान– पड़ती है। मानवता एवं मानव मूल्य, मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया को निर्धारित करते हैं।

मानव का स्वस्थ, सम्यक एवं सर्वांगीण विकास किस प्रकार हो? वह कैसे जीवन

* प्रवक्ता, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधन और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली–16

यापन करे? इन्हीं प्रश्नों के समाधान हेतु 'मानव-मूल्यों' की कल्पना की गई है। कुछ निश्चित जीवनादर्शों को मानदंड के रूप में लिया जाता है, इन्हीं मानदंडों या कसौटियों को हम 'मानव-मूल्य' कहते हैं।

'मानव-मूल्यों' पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने वाले विद्वानों ने भी मूल्यों को मानदंड के रूप में ही स्वीकार किया है। कुछ विद्वान मूल्यों को मानवोचित लक्ष्य या पुरुषार्थ की संज्ञा देते हैं (पाण्डेय, 1970, पृ. 33-34)। निरपेक्ष दृष्टि से विचार करने पर हम यह कह सकते हैं कि जीवन अपनी अर्थवत्ता रखता है, तब हमारा आशय यही होता है कि जीवन कुछ मूल्यों से युक्त है, जब हम यह कहते हैं कि जीवन अर्थहीन है, तब हमारा तात्पर्य होता है कि जीवन में मूल्यों का ह्रास है। दर्शन एवं समाजशास्त्र में मानव-मूल्यों पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार हुआ है। लेकिन सभी विचारकों ने यह स्वीकार किया है कि मानव मूल्य जीवन की सार्थकता के लिए अनिवार्य हैं।

मूल्य शब्द अंग्रेजी के 'Value' शब्द का पर्यायवाची है। मूल्य शब्द की व्युत्पत्ति मूल 'यत्' से हुई है। इसका अभिप्राय किसी पदार्थ के बदले में दिया जाने वाला धन, पदार्थ या बाजार-भाव है। समयानुसार मूल्य शब्द का भी पर्याप्त अर्थ विस्तार हुआ।

वस्तुतः मूल्य का प्रयोग सर्वप्रथम अर्थशास्त्र के क्षेत्र में किया गया था। आधुनिक युग में 'मूल्य' शब्द दर्शन, समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र से साहित्य एवं विज्ञान आदि के अनेक संदर्भों में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है। इसप्रकार हम देखते हैं कि 'मूल्य' शब्द मानव-जीवन के साथ ही कुछ जुड़ गया है। 'मूल्य' की परिभाषा करते हुए गोविंद चंद्र पाण्डेय ने उसे मानवोचित लक्ष्य या पुरुषार्थ कहा है। पाश्चात्य विचारक 'काब' ने मूल्यों की विवेचना करते हुए उन्हें मानदंड या स्तर स्वीकार किया है। क्यूवर ने मूल्यों को वैयक्तिक विचार माना है। युग तथा मेक ने भी 'मूल्यों' को उचित तथा महत्त्वपूर्ण होने के कारण व्यापक तथा अचेत धारणाएँ कहा है।

डा. राधा कमल मुकर्जी ने मूल्यों की व्युत्पत्ति की कल्पना मानव अस्तित्व और अनुभव के अनुभाविक आयाम से किया हैं। मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय विवेचना में उन्होंने 'मूल्यों' को वांछित उद्देश्य अभिरुचियों की श्रेणी में रखा है। (मुखर्जी, 1969, पृ. 129)

## मूल्य मीमांसा

'मूल्य' शब्द के बहुअर्थक प्रयोग के आधर पर 'मूल्य' से संबंधित मूल्य मीमांसा (Exiology) दर्शनशास्त्र के एक स्वतंत्र अंग के रूप मे विकसित है। इसके अंतर्गत 'मूल्य' के स्वरूप, तत्व और प्रकाश आदि का विस्तृत अध्ययन एवं विवेचन किया जाता है। भारतीय दर्शन में (मूल्यमीमांसा) शुरू से ही महत्त्वपूर्ण स्थान पा चुकी थी। यदि हम भारतीय दर्शनों को 'मूल्यों' का दर्शन कहें तो अनुपयुक्त नहीं होगा। 'मूल्य' को भारतीय दर्शन में पुरुषार्थ कहते हैं। भारतीय मनीषियों ने चार पुरुषार्थ बतलाये हैं, ये हैं- अर्थिक मूल्य, काम (मानसिक मूल्य), धर्म (नैतिक मूल्य) और मोक्ष (आध्यत्मिक मूल्य)। इनमें से आर्थिक और नैतिक 'मूल्य' साधन कृत्य है तथा काम और मोक्ष 'मूल्य' साध्य 'मूल्य' है। अर्थ और धर्म क्रमशः काम एवं मोक्ष के साधन हैं।

पाश्चात्य दर्शन में प्लेटो और अरस्तु के सिद्धान्तों को 'मूल्य' मीमांसा का जनक माना जा सकता है, क्योकि प्लेटों के प्रत्यय सिद्धान्तों से ही मूल्य मीमांसा प्रारंभ हुई तथा अरस्तु, 'आचार शास्त्र', राजनीतिक एवं तत्व विज्ञान' ने इसे विकसित और व्यवस्थित ज्ञान का रूप प्रदान किया। आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिकों में 'अर्बन' और 'मुरे' प्रमुख है जिन्होंने 'मूल्य' को विवेचित एवं परिभाषित करने का पर्याप्त प्रयास किया है।

पाश्चात्य विचारकों में अर्बन द्वारा मूल्यों का विभाजन निम्न प्रकार से किया गया है :

(1) शारीरिक मूल्य (2) आर्थिक मूल्य
(3) मनोरंजनात्मक मूल्य (4) सामुदायिक मूल्य
(5) चरित्रात्मक मूल्य (6) बौद्धिक मूल्य
(7) सौन्दर्यात्मक मूल्य (8) धर्मिक मूल्य

अर्बन ने शारीरिक एवं आर्थिक मूल्यों को विशेष महत्व दिया है। इसके अनुसार शारीरिक एवं आर्थिक मूल्य इसलिए आधारभूत माने जाते है, क्योंकि मानव जीवन के लिए वह अति आवश्यक है, जबकि मूल्यों के अन्य वर्ग क्रमशः कम आवश्यक है,

प्रथम तीन शारीरिक, आर्थिक एवं मनोरंजनात्मक मूल्यों को शरीर विषयक मूल्य कहा जाता है, क्योंकि वे मानव शरीर एवं उनकी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। सामुदायिक एवं चारित्रिक मूल्यों को सामाजिक मूल्यों के अन्तर्गत रखा गया है और शेष तीन सौन्दर्यात्मक, बौद्धिक एवं धर्मिक मूल्यों को आध्यात्मिक मूल्य की संज्ञा प्रदान की गयी है। सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को भी अर्बन ने उच्चतम शारीरिक विषय मूल्य (Higher Organic Value) कहा है।

प्रस्तुत अध्ययन के लिए भी एक ऐसा वर्गीकरण प्रस्तावित है, जिसमें मानव मूल्य अलग-अलग वर्गीकृत होते हुए भी साधन एवं साध्य इन दोनों रूपों में प्रतिस्थापित है।

**मानव-मूल्य**

(1) शारीरिक मानव मूल्य (2) आर्थिक मानव मूल्य

(3) मनोवैज्ञानिक मानव मूल्य (4) सामाजिक मानव मूल्य

(5) अध्यात्मिक मानव मूल्य (6) बौद्धिक मानव मूल्य

**मूल्यों का पुनर्निधारण**

मानव जीवन और समाज में परिवर्तन के साथ-साथ मूल्यों के मानदण्डों में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है। मानदण्डों के परिवर्तन द्वारा ही कभी सामान्य मूल्य उच्चतर मूल्यों की श्रेणी में रखे जाते हैं और कभी-कभी उच्चतर मूल्य सामान्य मूल्यों या निकृष्ट मूल्यों के रूप में स्वीकार होने लगते हैं। देश काल के अनुसार ये मानदण्ड प्राय: बदलते रहते हैं। मानदण्डों में परिवर्तन से मूल्य परिवर्तन बड़ी तेजी से होते हैं।

**अध्ययन के उद्देश्य**

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है :

1. पाठों का वर्गीकरण करना,
2. वर्गीकृत पाठों का आनुपातिक प्रतिनिधित्व ज्ञात करना,
3. विभिन्न पाठों में मानवमूल्यों का वितरण ज्ञान करना,

4. पाठों में वर्गीकृत मानव मूल्यों का विश्लेषण करना
5. मूल्यों के पुनर्निर्धारण की दृष्टि से आवश्यक सुझाव देना।

## अध्ययन विधि

वस्तुगत आधार पर पाठों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण करने के लिए किसी न किसी तकनीक का निर्धारण आवश्यक होता है। कुछ पाठों का अध्ययन के पश्चात् शोधकर्त्ता को यह स्पष्ट हुआ कि जितने भी प्रकार के मानव मूल्यों का वर्णन उच्चतर प्राथमिक स्तर पर प्रचलित संस्कृत की पाठ्यपुस्तकों में किया गया है, उनका वर्गीकरण हम निम्नलिखित ढंग से कर सकते हैं :

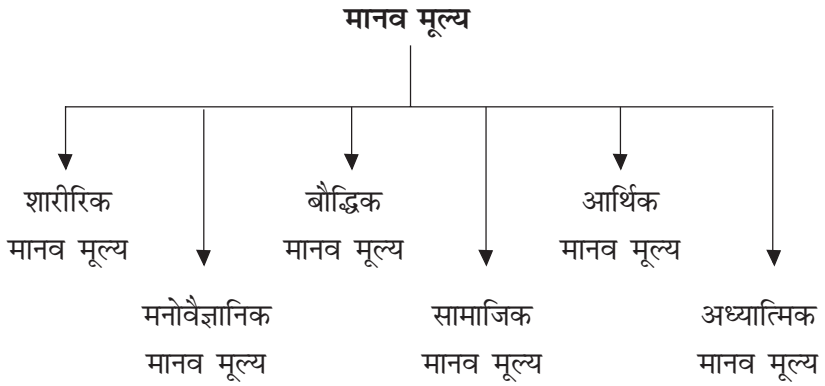


प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है और इसी विधि के आधार पर आवश्यक प्रदत्तों का संग्रह भी किया गया है।

## प्रतिदर्श का चयन

प्रस्तुत प्रतिदर्श का चयन किसी पूर्व निर्धारित प्रतिरूप के आधार पर नहीं किया गया है बल्कि यह शोधकर्त्ता के निर्णयों पर आधारित है। अत: इस प्रतिदर्श के चयन के अवसरों की समानता के बारे में निश्चय रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

उच्चतर प्राथमिक स्तर से तात्पर्य कक्षा 6, 7 एवं 8 से है। इसी क्रम में उच्चतर प्राथमिक स्तर पर उत्तर प्रदेश में संस्कृत विषय के लिए स्वीकृत की गई पाठ्यपुस्तकों की सूची निम्नलिखित है :

1. संस्कृत सुबोध भाग–1 (कक्षा 6 के लिए)
2. संस्कृत सुबोध भाग–2 (कक्षा 7 के लिए)
3. संस्कृत सुबोध भाग–3 (कक्षा 8 के लिए)

## मानवीय मूल्यों के संदर्भ में पाठों का विश्लेषण

यदि हम संस्कृत सुबोध भाग–1 के पाठों पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि इस पुस्तक में सबसे ज्यादा जोड़ सामाजिक मानव मूल्य पर दिया गया है जिसका प्रतिशत 73.92% है। इसके बाद बौद्धिक मानव मूल्य का स्थान आता है, जिसका प्रतिशत 13.05% है। आध्यात्मिक मानव मूल्यों का प्रतिशत 8.69% है। जबकि शारीरिक मूल्य 4.35% है। आर्थिक मूल्यों की पूर्णत: उपेक्षा की गई है।

संस्कृत सुबोध भाग–2 में भी जो पाठ संकलित किए गए हैं उनमें भी सबसे ज्यादा जोड़ सामाजिक मानव मूल्यों पर ही दिया गया है जिनका प्रतिशत 54.17% है। बौद्धिक मूल्य को भी विशेष महत्व दिया गया है जिनका प्रतिशत 33.34% है। तदन्तर समान

**तालिका–1**

**पाठों का वर्गीकरण**

| पुस्तक का नाम | पाठ | संख्या | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| संस्कृत सुबोध भाग–1 | गद्य<br>पद्य | 19<br>04/23 | 82.60%<br>17.40% |
| संस्कृत सुबोध भाग–2 | गद्य<br>पद्य | 20<br>04/24 | 83.34%<br>16.76% |
| संस्कृत सुबोध भाग–3 | गद्य<br>पद्य | 21<br>04/27 | 77.78%<br>22.22% |
| | कुल गद्य पाठ<br>कुल पद्य पाठ | | 81.08%<br>18.92% |

**तालिका-2**

**संस्कृत सुबोध भाग-1 के पाठों में वर्णित मानव मूल्य की तालिका**

| मानव मूल्य | पाठ संख्या | योग | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| शारीरिक | 10 | 01 | 4.35% |
| आर्थिक | 0 | 0 | 0 |
| सामाजिक | 9,12,13,14,15,17,18,19,20,21, 22,23,24,25,26,27,28,29 | 17 | 73.92% |
| मनोवैज्ञानिक | 0 | 0 | 0 |
| बौद्धिक | 24,30,31 | 03 | 13.05% |
| आध्यात्मिक | 11,16 | 02 | 8.69% |
| पद्य | 10,19,24 | 03 | 11.11% |

**तालिका-3**

**संस्कृत सुबोध भाग-2 के पाठों में वर्णित मानव मूल्य की तालिका**

| मानव मूल्य | पाठ संख्या | योग | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| शारीरिक | 23 | 01 | 4.17% |
| आर्थिक | 0 | 0 | 0 |
| सामाजिक | 1,2,7,8,9,13,14,15,16,17,18,19,21 | 13 | 54.17% |
| मनोवैज्ञानिक | 5 | 01 | 4.17% |
| बौद्धिक | 3,6,10,11,12,20,22,24 | 08 | 33.34% |
| आध्यात्मिक | 4 | 01 | 4.17% |

**तालिका-4**

**संस्कृत सुबोध भाग-4 के पाठों में वर्णित मानव मूल्य की तालिका**

| मानव मूल्य | पाठ संख्या | योग | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| शारीरिक | 15 | 1 | 3.70% |
| आर्थिक | 9,26 | 2 | 7.41% |
| सामाजिक | 5,6,7,8,12,13,14,21,23 | 9 | 33.34% |
| मनोवैज्ञानिक | 24 | 1 | 3.70% |
| बौद्धिक | 2,3,4,10,11,16,17,18,19,25,27 | 11 | 40.75% |
| आध्यात्मिक | 1,20,22 | 3 | 11.12% |

रूप से शारीरिक, मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक मानव मूल्यों को महत्व दिया गया है जिसका समान रूप से प्रतिशत 4.17% है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस स्तर पर भी सामाजिक मूल्य को प्रधान रूप से संकलित किया गया है तथा आर्थिक मूल्यों की उपेक्षा की गयी है।

संस्कृत सुबोध भाग-03 को भी यदि देखें ता यह बात स्पष्ट रूप से मालूम होती है कि हम ज्यों-ज्यों उच्च कक्षाओं की ओर अग्रसर होते जाते हैं त्यों-त्यों पाठ्यपुस्तकों में मानवीय मूल्यों में एक संतुलन सा मिलने लगता है तथा सामाजिक एवं बौद्धिक मूल्यों को प्रधन रूप से स्वीकार करते हुए अन्य मूल्यों पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है।

इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि मानव मूल्यों का यह वितरण असमान्य है, यही नहीं शरीरिक एवं आर्थिक मानव मूल्यों को बहुत कम स्थान दिया गया है, शोधकर्त्ता की दृष्टि में यह बहुत ही असंगत है। क्योंकि सामाजिक गैर बराबरी के पीछे आर्थिक कारक सर्वदा प्रधान तौर पर कार्य करते रहते हैं। अत: भारत जैसे वर्गीय समाज में आर्थिक मूल्यों की स्थापना भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि सामाजिक मानव

मूल्य की स्थापना। शिक्षा का एक उद्देश्य शारीरिक विकास भी होता है, अत: शारीरिक मूल्यों की तर्कसंगत स्थापन भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है लेकिन शारीरिक मानव मूल्य का प्रतिशत तीनों भागों में कम होना (4.35, 4.17,3.70) यह दर्शाता है कि आधुनिक भारतीय शिक्षाविदों की दृष्टि में शारीरिक मानव मूल्य का स्थान अत्यन्त ही गौण है जबकि विश्व के सभी प्रमुख शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित करते हुए बालक के शारीरिक विकास को शिक्षा का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण उद्देश्य बतलाया है।

मानवमूल्य के दृष्टिकोण से तीनों पुस्तकों पर सम्मिलित रूप से विचार करने पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :

1. गद्य पाठों में सर्वाधिक स्थान वर्णनात्मक निबन्धें को दिया गया है।
2. तीनों पाठ्यपुस्तकों पर सम्मिलित रूप से विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि लगभग एक तिहाई पाठों में सामाजिक मानव मूल्य को प्रतिस्थापित किया गया है।
3. सामाजिक मानवमूल्य के बाद बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक मानवमूल्यों को क्रमश: प्रमुख स्थान दिया गया है।
4. शारीरिक एवं आर्थिक मानवमूल्यों को सबसे गौण स्थान मिला है।
5. पठन कौशल की दृष्टि से गद्य एवं पद्य पाठों में विविधता के दर्शन होते हैं।
6. प्राचीन एवं अर्वाचीन मूल्यों को ही इन पाठ्यपुस्तकों में प्रमुखता के साथ प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया गया है।
7. अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के व्यक्तियों, स्थानों एवं घटनाओं की इन पाठ्यपुस्तको में अत्यन्त उपेक्षा की गई है।
8. भारतीय समाज की वर्तमान आवश्यकताओं को देखते हुए मानवमूल्यों का उचित सम्प्रेषण एवं वितरण इन पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से नहीं किया गया है।

## संदर्भ

कुमार, कृष्ण (1978) राज समाज और शिक्षा, राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली
पाण्डेय, रामशकल (2003), संस्कृत शिक्षण, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
शर्मा, आर.ए. (1995), संस्कृत अनुसंधान, सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ
चैतन्य, कृष्ण (1965), संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
उपाध्याय, दुर्गावती (1991), विगत (उन्नीसवीं) शताब्दी में संस्कृत शिक्षा की स्थिति,
ई. ईश्वरन् (1972) संस्कृत लिट्रेचर आपफ केरल, त्रिवेन्द्रम्

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 15, अंक 2, अगस्त 2008

*शोध टिप्पणी/संवाद*

# वर्तमान संदर्भ में शांति शिक्षा की सांदर्भिक उपादेयता

**दिनेश कुमार सिंह***

## सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

मानव जीवन में संभवत: सर्वाधिक अपेक्षित वस्तु है- शांति। मनुष्य अदंर और बाहर दोनों की शांति के लिए सबसे अधिक इच्छुक होता है। यदि अंत:करण शांत है तो बाहर भी वह शांति का अनुभव करेगा। हमारे ऋषि-मुनियों ने बाहर की शांति को जितना महत्व दिया है उससे अधिक अंत:करण की शांति को स्वीकार किया है। अंत:करण की शांति के लिए इंद्रियों का संयम और वाणी पर नियंत्रण सबसे आवश्यक है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को समझाते हुए कहा है कि जो अपने आहार, विहार, विचार, व्यवहार में संयम रखता है और सभी स्थानों पर नियंत्रित रहता है वही वास्तव में शांत कहलाता है। जब वह शांत है तभी परिवार, समाज और विश्व को शांति दे सकता है। अशांत व्यक्ति का मन भटकता रहता है, उसके मन में दुविधा होती है और चंचल मन के साथ व्यक्ति किसी बात के लिए ठोस निर्णय नहीं ले पाता।

आज विश्व में चारों ओर अंशाति है क्योंकि मानवीय मूल्यों को भौतिक मूल्य प्रभावित कर रहे हैं जिससे मानवीय जीवन की गुणवत्ता का अवमूल्यन हो रहा है। मनुष्य का मन अशांत है जिससे विश्व शाांति स्थापित नहीं हो पा रही है।

आज का समाज एक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। परिवर्तन की इस आंधी ने जहां जीवन के बहुतेरे मूल्यों एवं प्रतीकों पर प्रहार किया है वहीं एक पूरी की पूरी पीढ़ी को परम्परा और आधुनिकता, जड़ता और गतिमयता के द्वंद में भटकने के लिए छोड़ दिया है। परिणामस्वरूप पुरानी मान्यताएं समाप्त हो रही हैं या हो चुकी हैं और

* शोध छात्र, शिक्षा संकाय, सतीश चन्द्र महाविद्यालय, बलिया, उत्तर प्रदेश

नई मान्यताएं सामने आ रही हैं। इन नई मान्यताओं में भौतिक मूल्यों और अर्थ की प्रधानता है। नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से लोगों का विश्वास उठ सा गया है। किंतु समाज केवल भौतिक मूल्यों से ही संचालित नहीं हो सकता। इसलिए ऐसे मार्गों की खोज करना आवश्यक है जिन पर चलकर मनुष्य वास्तविक शांति प्राप्त कर सके।

वर्तमान अंतराष्ट्रीय आर्थिक व राजनीतिक संरचना में कोई भी विकासशील राष्ट्र अपनी शिक्षा प्रणाली के आधुनिकीकरण से विमुख नहीं हो सकता। वस्तुतः शिक्षा को सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन की आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं की पूर्ति के सशक्त माध्यम एवं उसके प्रति संवेदनशील होना चाहिए। शिक्षा को प्रासंगिक बनाये रखने के लिए इसमें नये उद्देश्यों को प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए जिससे शिक्षा उच्च सम्भावनाओं को कायम रखने वाली एक प्रक्रिया के रूप में सक्रिय बनी रहे।

वर्तमान मनुष्य ने पूर्व की अपेक्षा अधिक भौतिक संसाधन जुटाकर अपने जीवन को आरामदायक बना लिया है लेकिन पूरा विश्व नस्ल, धर्म, जाति, वर्ग और आस्था के आधार पर बटने की स्थिति में पहुँच चुका है। एक प्रकार से यह विरोधभाषी स्थिति है कि एक ओर मानव इस पृथ्वी पर मौजूद सभी प्राणियों में सर्वाधिक विकसित और बुद्धिमान प्राणी के रूप में उभरा है, वहीं दूसरी ओर मनुष्य अत्याधिक आत्केंद्रित, व्यक्तिवादी, असहिष्णु और काफी हद तक आत्मघाती बन गया है।

आज शक्ति और संसाधन हासिल करने की अंधी दौड़ में दीर्घ कालिक मानवमूल्य प्रायः सभी देशों में पीछे छूट गये। क्योंकि ये देश आर्थिक एवं भौतिक संसाधनों की प्रतियोगिता में उलझे रहे। इन परिस्थितियों में शिक्षा को नागरिकों में शांति, सहिष्णुता, लोकतांत्रिक मूल्यों और मानव अधिकार तथा कर्तव्यों की संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी होगी।

आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अहिंसा और सहिष्णुता की संस्कृति के सृजन की तीव्र आवश्यकता है जिससे शांतिपूर्ण, स्नेहपूर्ण एवं स्वस्थ समाज के निर्माण में सहयोग मिल सके।

## आवश्यकता एवं महत्व

बीसवीं शताब्दी में मानव ने विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है। इस वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास ने विश्व को एक 'वैश्विक गाँव' का रूप प्रदान

कर दिया है। इस विकास ने मानव सभ्यता को निश्चित रूप से लाभान्वित किया है। किंतु लाभों के साथ-साथ ही विश्व के समक्ष कुछ गंभीर चुनौतियाँ भी उपस्थित हुई हैं। आज समूचा विश्व युद्ध सामग्री के विस्तार, अत्याधिक राजनीतिक तनाव, अंतराष्ट्रीय विवाद, धन और प्राकृतिक संसाधनों का असमान वितरण और मानवाधिकार हनन जैसी समस्याओं का सामना कर रहा है। उपर्युक्त परिस्थितियाँ शांति को प्रभावित कर रही हैं तथा युद्ध की संभावना को बढ़ावा दे रही हैं। इन परिस्थितियों से बचने के लिए आगे आने वाली पीढ़ी में शांति के सृजन की संस्कृति के विकास की अतितीव्र आवश्यकता है, और यह शांति शिक्षा द्वारा ही संभव है।

शांति शिक्षा के इसी महत्व को स्वीकार करते हुए यूनेस्को द्वारा नियुक्त डेलर आयोग ने अपनी रिपोर्ट 'लर्निंग: ट्रेजर विदिन' में शिक्षा के चार स्तंभों में 'लर्निंग : टू लीव टुगेदर' यानि 'सह अस्तित्व के लिए शिक्षा' को एक सतंभ माना है।

शांति शिक्षा के इसी महत्व को समझते एवं स्वीकार करते हुए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT) नई दिल्ली ने विद्यालयीय पाठ्यक्रम में 'शांति' नामक मूल्य को प्रोत्साहित करने के लिए 'शांति शिक्षा' (पीस एजूकेशन) को सम्मिलित किया है। (दैनिक जागरण, 01 जुलाई 2008, वाराणसी) क्योंकि समाज में बढ़ रही हिंसा एवं अशांति को 'शांति शिक्षा' द्वारा ही नियत्रित किया जा सकता है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद ने शांति शिक्षा को अलग विषय के रूप में शामिल न करके इसको अन्तरानुशासनिक उपागम के माध्यम से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सम्मिलित करने पर बल दिया है जिससे छात्रों में शांति शिक्षोन्मुख अभिवृत्ति विकसित की जा सके।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रय प्रारूप(2005) में भी ''शांति शिक्षा'' के महत्व को स्वीकार करते हुए लिखा गया है कि शिक्षा शांति, सहिष्णुता, न्याय, अंतर सांस्कृतिक समझ तथा नागरिक उत्तरदायित्व के सृजन प्रक्रिया का महत्वपूर्ण उपकरण है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में कहा गया है कि ''भारत ने सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार मानते हुए हमेशा विश्व शांति तथा अंतराष्ट्रीय सद्भाव के लिए कार्य किया है। इस प्राचीन परम्परा को बनाये रखने के लिए शिक्षा को इस विश्व-दृष्टि को सशक्त करना होगा तथा आगामी पीढ़ी को अंतर्राष्ट्रीय सहयोग तथा शांतिपूर्ण सह अस्तित्व के लिए

प्रेरित करना होगा। इस पक्ष की उपेक्षा नहीं की जा सकती।'' (मा.सं.वि. मंत्रालय, 1986)।

उपर्युक्त विश्लेषण तथा विवेचन से यह सिद्ध है कि वर्तमान संदर्भ में 'शांति शिक्षा' अत्याधिक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है।

## शांति शिक्षाः अवधारणा एवं उद्देश्य

मानवता के समक्ष शांति, स्वतंत्रता एवं सामाजिक न्याय चिरकालीन लक्ष्य हैं। इन्हें प्राप्त करने के प्रयासों को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। शिक्षा एक सार्थक संपदा है जो चुनौतियों का सामना करने के लिए किये गये प्रयासों की सफलता में सहायक हो सकती हैं यूनेस्को द्वारा नियुक्त डेलर आयोग ने भी माना है कि शिक्षा व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास में आधारभूत भूमिका निभाती है। आयोग ने लिखा है कि शिक्षा ''एक महत्वपूर्ण साधन है जिसमें मानव के विकास का सुसंठित स्वरूप पनप सके तथा जिससे गरीबी, अलगाव, अज्ञान, शोषण एवं युद्ध की स्थितियों का निराकरण हो सके।'' शांति, धैर्य एवं साहस प्रदान करना शिक्षा की जिम्मेदारी है।

'शांति' शब्द आकारिक दृष्टि से सूक्ष्म होने पर भी महत्व की दृष्टि से इतना व्यापक है कि सम्पूर्ण विश्व का अस्तित्व ही इस पर निर्भर है। किसी भी कार्य, चाहे वह छोटा हो अथवा बड़ा के सम्पादन हेतु शांति की भूमिका सर्वप्रमुख मानी जाती है। सर्व शक्ति सम्पन्न होने के बावजूद भी व्यक्ति सुखी नहीं रह पाता तो इसके मूल में शांति का अभाव ही दिखाई पड़ता है। यदि व्यक्ति का मन शांत होता है तो वह बाहरी वातावरण के अशांतिकारक तत्वों को जीत लेता है परंतु यदि मन ही अशांत हो तो व्यक्ति किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में आकर कई व्यक्तियों को मानसिक रूप से अशांत करते हुए समाज को विकृत कर देता है।

'शांति' एक बहुआयामी सम्प्रत्यय है जिसकी कई व्याख्यायें या अर्थ है। इसे सरलतम् स्वरूप में विवाद या युद्ध की अनुपस्थिति के रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है। 'शांति' का संबंध मन की शांति या आंतरिक शांति से भी है। भगवान बुद्ध ने शांति के इस सम्प्रत्यय का प्रतिपादन किया और कहा कि मन ही सभी चीजों का अग्रगामी होता है। यूनेस्को ने भी अपने संविधान में कहा है कि ''चूंकि युद्ध की शुरूआत मनुष्य के मन से होती है अतः शांति की रक्षा का प्रारंभ भी मानव मन

से होना चाहिए।'' इस संकटकालीन विश्व में 'शांति' स्थापित करने की समस्या अति प्राचीन है।

'शांति' की अवधारणा को स्पष्ट रूप से समझने के लिए महात्मा गांधी द्वारा दी गयी व्याख्या को समझना समीचीन होगा। महात्मा गांधी ने 'शांति'के सम्प्रत्यय की एक बहुत ही वृहद व्याख्या दी है। उन्होंने 'शांति' की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए 'हिंसा' की व्याख्या की है। उनके अनुसार हिंसा, राष्ट्र द्वारा राष्ट्र का, व्यक्ति द्वारा व्यक्ति का, पुरूष द्वारा महिला का, प्रणाली द्वारा प्रणाली का और मशीन द्वारा व्यक्ति का आर्थिक, सामाजिक या राजनीतिक शोषण है। हिंसा के ठीक विपरीत अहिंसा है जिसके कम से कम आठ अवयव हैं- शांति, समानता, निर्भयता, मानवता, प्रेम, आत्म-नियंत्रण, सत्य और सहनशीलता। महात्मा गांधी ने एक अहिंसक समाज की कल्पना की थी जो सभी प्रकार के शोषण से मुक्त होगा तथा इसकी प्राप्ति शिक्षा द्वारा होगी। इस प्रकार'शांति' के सम्प्रत्यय में निम्नलिखित तत्वों का समावेश है-

1. तनाव, विवाद और युद्ध की अनुपस्थिति
2. अहिंसक सामाजिक प्रणाली
3. शोषण और किसी प्रकार के अन्याय की अनुपस्थिति
4. अंतराष्ट्रीय सहयोग तथा समझ
5. पारिस्थितिक संतुलन तथा संरक्षण
6. मन की शांति

इस प्रकार 'शांति' एक व्यापक अवधारणा है जिसमें बहुत से मूल्य समाहित है । यह एक मानसिक अभिवृत्ति है जिसमें प्रेम, करूणा, एकता, सहनशीलता, अंतरनिर्भरता और परमार्थनिष्ठा आदि मूल्य समाहित हैं।

'शांति शिक्षा' उपरोक्त वणिर्त मूल्यों को विकसित एवं प्राप्त करने का सशक्त माध्यम है। ''शांति शिक्षा'' एक विज्ञान है जो व्यक्ति के आधारभूत आवश्यकताओं तथा समाज की वास्तविक प्रकृति का अध्ययन करता है, जिसमें इन आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और यह लोगों को हिंसक तथा अहिंसक समाज के प्रति जागरूक बनाता है। इस प्रकार ''शांति शिक्षा'' शोषण रहित, उत्पीड़न रहित तथा अहिंसक समाज के सृजन की शिक्षा है''। कुमार, अनिल (2001)

''शांति शिक्षा'' कौशल निर्माण है। यह बच्चों को अपनी समस्याओं के सृजनात्मक और अहिंसक समाधान का रास्ता प्राप्त करने की शक्ति प्रदान करती है – शांति -निर्माण प्रत्येक मनुष्य का कार्य है तथा यह मानवता के समक्ष एक चुनौती है' – Schmind and Alice Friedman (1988)।

लेनार्ट वरेंस (Lennart Vriens) (1989) ने कहा है कि ''शांति शिक्षा'' के विभिन्न व्याख्याओं में से इसके पांच भिन्न प्रकारों की पहचान करना संभव है-

- 'शांति शिक्षा' शांतिपूर्ण लोगों के लिए शिक्षा है जो इस पृथ्सची पर शांति का सृजन करेंगे। शिक्षा शांति-निर्माण का सशक्त साधन है।
- 'शांति शिक्षा' एक प्रकार की शिक्षा है जो लोगों को युद्ध के राजनीतिक पृष्ठभूमि तक पहुंचाती है और उन कारकों की पहचान कराती है जो शांति को प्रभावित करते हैं।
- 'शांति शिक्षा' लोगों को उनकी समस्याओं से मुक्ति दिलाती है।
- 'शांति शिक्षा' का धार्मिक शिक्षा से मजबूत संबंध है, क्योंकि विश्व के प्राय: सभी प्रमुख धर्म 'शांति पर विशेष जोर देते हैं।
- शिक्षा और शांति का सीधा संबंध नहीं है। शिक्षा शांति का एक कारक है।

ओबैख (Obach) (1987) ने तीन मान्यताओं की पहचान की है जो 'शांति शिक्षा' के लिए आधार का निर्माण करती हैं

प्रथम मान्यता है कि शिक्षा सिर्फ मानव-समाज की ही प्रक्रिया नहीं है बल्कि यह पृथ्वी के सभी प्राणियों की प्रक्रिया है।

द्वितीय मान्यता है कि 'शांति' आवश्यकताओं, इच्छाओं, अभिलाषाओं और मूल्यों के समूह का एक प्रकार है जो मानव चेतना में व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों रूपों में प्रकट होती है।

तीसरी मान्यता का संबंध मानव जाति से है जिसकी वृद्धि और विकास पृथ्वी की क्रम-विकास संबंधी प्रक्रिया से दृढ़ता से जुड़ा है। पृथ्वी के समस्त जीवधारियों तथा निर्जीव अवयवों के मध्य एक अंतर- संवाद स्थापित रहता हैं इसी संवाद के

परिणामस्वरूप व्यक्तिगत और सामाजिक शक्ति का सतत् विकास एवं वृद्धि होती है।

'शांति शिक्षा' एक वृहद अवधारणा है और इसकी कई शाखायें है। इनमें से प्रमुख हैं :

1. नि:शस्त्रीकरण शिक्षा
2. मानवाधिकार शिक्षा
3. पर्यावरण शिक्षा
4. अहिंसा के लिए शिक्षा
5. मानवता एवं न्याय के लिए शिक्षा
6. अंतराष्ट्रीय सहयोग के लिए शिक्षा
7. वैश्विक शिक्षा

'शांति शिक्षा' के उद्देश्यों पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो इसके बहुत से उद्देश्य उभर कर सामने आते हैं। शांति की संस्कृति का सृजन एवं संरक्षण और प्रत्येक व्यक्ति की सभी प्रकार के शोषण से रक्षा 'शांति शिक्षा' के उद्देश्यों में समाहित हैं

वरेंस (Vriens) ने नीदरलैंड में 1988 में किये गये अपने शोध के आधार पर 'शांति शिक्षा' के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला है। ये निम्नवत हैं :

- व्यक्तियों और समूहों के मध्य घनिष्ठता और संबद्धता को प्रोत्साहित करना।
- बच्चों को विवादों को निष्पक्ष एवं न्यायपूर्ण तरीके से निपटने के लिए प्रशिक्षित करना।
- बच्चों को पूर्वाग्रहों तथा पक्षपातों के विषय में जागरूक करना तथा इनसे निबटना सिखाना।
- बच्चों के साथ-साथ खेलने तथा काम्र करने एवं अन्य समूह कार्य के लिए प्रेरित करना।
- बच्चों में हिंसक एवं युद्ध विरोधी अभिवृत्ति को प्रेरित करना।
- बच्चों को अपनी उत्तेजना को एक जिम्मेदार तरीके से व्यक्त करना सिखाना।
- बच्चों में लोकतांत्रिक विचारों को प्रेरित करना और इस प्रकार उन्हें स्वतंत्र विचार करने में सहयोग देकर अधिकाधिक परिपक्व बनाना।

- बच्चों को प्रमुख वैश्विक समस्याओं से परिचित कराना और बेहतर भविष्य के लिए इनमें परिवर्तन करने के लिए प्रेरित करना।

**शांति शिक्षा मूल्य के रूप में**

सार्वभौमिक मूल्य जिनकी संख्या पांच है। ये मानव जीवन के पांच स्तंभ हैं इसलिए इन्हें पंचरत्न तथा पंचशील भी कहा जाता है। ये निम्नलिखित है–

1. सत्य–Truth
2. धर्म–Righteous Conduct
3. शांति–Peace
4. प्रेम–Love
5. अहिंसा–Non-Violence

उपरोक्त पांचों मानवीय मूल्य, मनुष्य जीवन के पांच पक्षों से संबंधित हैं

1. शारीरिक पक्ष
2. बौद्धिक पक्ष
3. संवेगात्मक पक्ष
4. मन:पक्ष
5. आध्यात्मिक पक्ष

सार्वभौमिक मानवीय मूल्य एक दूसरे के बिना एकांगी एवं अपूर्ण है। अत: वे अंर्तसंबंधित एवं अवच्छेदित है।

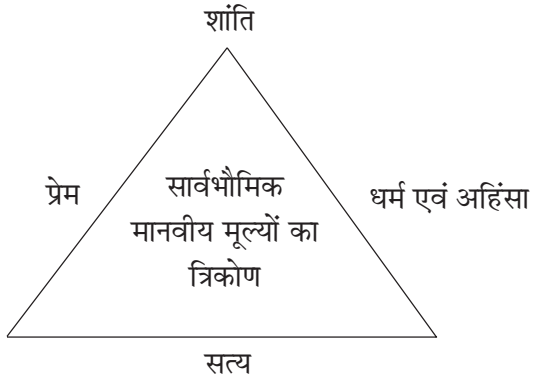


स्रोत –सिंह 2002

उपरोक्त त्रिकोण में आधार पर सत्य को प्रदर्शित किया गया है, बांयी भुजा पर प्रेम को, दायीं भुजा पर धर्म एवं अहिंसा, वहीं शीर्ष पर शांति को रखा गया है क्योंकि शांति (Superme Peace)निर्वाण या प्रशांति आत्म-साक्षात्कार के समतुल्य है। इस प्रकार शांति शिक्षा सिर्फ सैद्धांतिक अवधारणा न होकर मूल्योन्मुख सार्वभौमिक शिक्षा है।

## सांदर्भिक उपादेयता

शिक्षा शांति की संस्कृति के सृजन का प्रमुख साधन है आज पूरा विश्व शक्ति एवं संसाधनों की प्रतियोगिता में उलझा है। परमाणु हथियारों की प्रतियोगिता के इस युग में ''शांति शिक्षा'' ही आशा की वह किरण है जिसके माध्यम से पृथ्वी के समस्त जीवध ाारियों की रक्षा की जा सकती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 2000 को 'शांति की संस्कृति के लिए अंतराष्ट्रीय वर्ष' तथा सन् 2000से 2010 के दशक को 'डिकेड ऑफ पीस'' घोषित किया है। दूसरी ओर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली विद्यालयीय पाठ्यक्रम में ''शांति''नामक मूल्य को प्रोत्साहित करने के लिए 'शांति शिक्षा' को सम्मिलित कर रही है (द हिंदू 10 मार्च 2005) क्योंकि समाज में बढ़ रही हिंसा एवं अशांति को 'शांति शिक्षा' द्वारा नियत्रित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यूनेस्को द्वारा नियुक्त डेलर आयोग ने शिक्षा के चार प्रमुख स्तंभों में 'लर्निंग: टू लीव टूगेदर' को एक स्तंभ के रूप में स्वीकार किया है।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम का प्रारूप (NCF) 2005 में भी 'शांति शिक्षा' के महत्व एवं इसकी उपादेयता को स्वीकार करते हुए इसे विद्यालयीय पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने की संस्तुति की गयी है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (NCTE) नई दिल्ली ने यूनेस्को के सहयोग से एक परियोजना 'अध्यापक शिक्षा में शांति शिक्षा' चलाया है तथा यूनेस्को ने जनवरी 2001 में कोलम्बों में एक क्षेत्रीय सम्मेलन का आयोजन किया।

समय-समय पर विभिन्न विद्वानों तथा महान विभूतियों ने भी 'शांति शिक्षा' के महत्व एवं उपादेयता को रेखांकित किया है। मारिया मान्टेसरी ने तो यहां तक कहा कि ''सभी शिक्षा शांति के लिए है।'' महात्मा गांधी के सम्पूर्ण चिंतन में अहिंसा एवं शांति

केंद्र बिंदु ही हैं। उन्होंने कहा कि ''यदि हम विश्व में वास्तविक शांति की शिक्षा देना चाहते हैं तो हमें इसकी शुरूआत बच्चों से करनी होगी।'' सन् 1981 में भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमति इंदिरा गांधी ने एक साक्षात्कार में कहा कि ''विश्वविद्यालयों में शांति अध्ययन का स्वागत है।''

उपरोक्त विवेचन एवं विश्लेषण से स्पष्ट है कि वर्तमान संदर्भ में 'शांति शिक्षा' अत्याधिक प्रासंगिक एवं उपादेय है।

**आलोचनात्मक मूल्यांकन**

भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण विश्व में आंतरिक शांति की पक्षधर है

''शांतिनि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम्।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तुनः।''

(अर्थर्ववेद)

हमारे विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों को शांति की संस्कृति का संरक्षण, विकास एवं सृजन करना चाहिए जो कि इस नई सहसत्राब्दी के लिए शांति का सृजन करेगी। किंतु इसके साथ ही हमें यह ध्यान रखना होगा कि 'शांति का संस्कृति' तथा 'शांति शिक्षा' को वास्तविक जीवन के व्यवहारिक धरातल पर उतारा जाय। अन्यथा'शांति शिक्षा' भी और कई विभिन्न प्रकार की शिक्षाओं यथा–जनसंख्या शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा, मानवाधिकार शिक्षा आदि की तरह किताबी एवं सैद्धांतिक बनकर रह जायेगी।

**संदर्भ**

कुमार, अनिल (2002) : *प्रमोटिंग ए कल्चर ऑफ पीस थ्रो एजूकेशन*, यूनिवर्सिटी न्यूज, (39) 43, 22–28 अक्टूबर 2001

दलाई लामा (2002) : *एजूकेशन फॉर पीस, जर्नल ऑफ वैल्यू एजूकेशन*, वा.–2,न.–1

द हिंदू (10 मार्च 2005) : ''*स्कूल में नाऊ टीच पीस*''

दैनिक जागरण (1 जुलाई 2008): ''*एन.सी.ई.आर.टी. के कोर्स में शांति शिक्षा शामिल*'' वाराणसी

पाण्डेय, कल्पलता (2007) : *पीस एजूकेशन करीकुलम इन टीचर एजूकेशन प्रोग्राम, ट्रेन्डस एंड थाट्स इन एजूकेशन*, वा. XXII, 1-9 इलाहाबाद

पाण्डेय, सरोज (2002) : *टीचर एजूकेशन फार पीस :ए स्टेप टूआड्र्स लर्निंग टू लीव टुगेदर,*

यूनिवर्सिटी न्यूज, 38 (21), 22 मई 2000

पाण्डेय, सरोज (2004) : *एजूकेशन फॉर पीस: सेल्फ इन्स्ट्रक्शनल पैकेज फॉर टीचर एजूकेटर्स*

मोहंती, अतासी (2008) : *कानफ्लिक्ट रेजोलुशन थ्रो पीस एजूकेशन*, यूनिवर्सिटी न्यूज, 46 (09), 3–9मार्च, 2008

मिश्र, आत्मानन्द (1976) : *भारतीय शिक्षा के प्रवर्तक*, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर

राजपूत, जे.एस. (1997) : *टीचर्स फॉर ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी*, द हिंदुस्तान टाईम्स, फरवरी 18, 1997

राजपूत, सरला (1999) : *सीखने का स्रोत: भीतर का खजाना*, भारतीय आधुनिक शिक्षा, अप्रैल 1997

सिंह, देवेन्द्र (2002) : *श्री सत्य साईं बाबा का शिक्षा दर्शन: सिद्धांत एवं व्यवहार में*, अप्रकाशित शोध प्रबंध, शिक्षा संकाय वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 15, अंक 2, अगस्त 2008

*शोध टिप्पणी/संवाद*

# माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में पर्यावरण बोध

**सुभाष सिंह***

## भूमिका

सामान्य अर्थों में पर्यावरण एक अविभाज्य समष्टि है तथा भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तत्वों वाले परस्पर क्रियाशील तंत्रों से इसकी रचना होती है। मनुष्य तथा पर्यावरण के बीच संबंधों का अध्ययन किसी न किसी रूप में पहले से होता रहा है, परन्तु पर्यावरण विज्ञान के रूप में पर्यावरण बोध की संकल्पना तथा मानव-पर्यावरण संबंध के विभिन्न पक्षों में मानव, समाज तथा पर्यावरण के आयाम में विकास के साथ परिवर्तन होता रहा है। उल्लेखनीय है कि जब सर्वप्रथम मनुष्य इस पृथ्वी पर अवतरित हुआ, तो समस्त पृथ्वी वन्य क्षेत्र थी तथा भौतिक पर्यावरण अपने प्राकृतिक भौतिक रूप में था, परन्तु जैसे-तैसे जनसंख्या में तथा मानव कौशल में वृद्धि होती गई, अधिकाधिक प्राकृतिक क्षेत्र कृषि कार्यों, गांवों, नगरों, कस्बों, सड़क मार्गों तथा कई औद्योगिक प्रतिष्ठानों एवं सामाजिक संस्थानों में परिवर्तित होते चले गये। इस कारण प्राकृतिक या वन्य क्षेत्रों में तेजी से संकुचन होता गया। अपने अस्तित्व के भयानक खतरे से बेखबर उत्कृष्ट प्रौद्योगिकी से सुसज्जित 'आर्थिक मानव' प्राकृतिक संसाधनों के अनियोजित ढंग से तथा तीव्रगति से विदोहन में संलग्न रहा और आज भी उसी रूप में संलग्न है।

मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण कारक है, वह प्राकृतिक पर्यावरण तंत्र को विभिन्न हैसियत से विभिन्न रूपों में प्रभावित करता है चाहे वह जैवीय या भौतिक मनुष्य के रूप में हो अथवा आर्थिक, सामाजिक या औद्योगिक मानव के रूप में हो।

---

* प्रवक्ता, स्नातकोत्तर शिक्षक-शिक्षा विभाग, आर.आर. पी.जी. कालेज, अमेठी, सुलतानपुर (उ.प्र.)

इस परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण शिक्षा के अंतर्गत पर्यावरण को सुरक्षित रखना, पर्यावरण का निरंतर विकास व संवर्धन करना, हानिकारक कारकों का सफलतापूर्वक नियंत्रित करने का प्रयास करना, अधिक उपयोग में आने वाली पर्यावरणीय वस्तुओं का विवेकपूर्ण उपयोग करना एवं वनों की महत्ता आदि का समावेश शामिल है। जिसके फलस्वरूप आज छात्रों में अपने पर्यावरण के प्रति जागरूकता आयी है, परन्तु यह जागरूकता पर्याप्त नहीं है, क्योंकि इस प्रकार से सिद्धांत: पर्यावरण को समझा तो लेते है, परन्तु पर्यावरण के प्रति व्यवहार द्वारा अर्जित ज्ञान से कुछ भिन्नता देखने को मिलती है। अत: आज इस बात की आवश्यकता है कि बालकों को न केवल पुस्तकीय ज्ञान द्वारा सचेत किया जाय, बल्कि उन्हें प्रायोगिक रूप से पर्यावरण की महत्ता का आभास कराया जाए, जिससे उन्हें अधिक से अधिक अपने पर्यावरण के बारे में बोध हो सके।

आज ऐसी संस्कृति के विकास करने की आवश्यकता है, जिसमें प्राकृतिक सम्पदा का विवेकपूर्ण दोहन हो और उसका अपव्यय रूके। विनाश करके विकास की बात करना नितान्त कल्पना है। अत: हमें ऐसी शिक्षा नीति व्यवहार में लानी होगी, जो आर्थिक एवं सामाजिक विकास के साथ-साथ पर्यावरण का संरक्षण कर सके। हमें पर्यावरण का संरक्षण करना है, अत: जनसामान्य के निम्न स्तर से जागरूकता पैदा करनी होगी स्वस्थ्य पर्यावरण विकसित करने के लिए शिक्षा के प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च स्तरों पर पाठ्यक्रमों को नवीन रूप से संगठित करने की आवश्यकता है; जिससे न केवल बालकों में बचपन से पर्यावरण के प्रति अपेक्षित ज्ञान का संचार हो, अपितु वे आगे चलकर पर्यावरण का उचित रूप से संरक्षण कर सामजिक व आर्थिक विकास कर सकें। हमें इस बात का ध्यान रखना होगा, कि जो कुछ भी हम अपने पर्यावरण से प्राप्त करते है, उन्हें हमें अपने पर्यावरण को वापस भी लौटाना होता है। इसके लिए स्वस्थ व शुद्ध विचार एवं नैतिकता का सहारा लेना होगा, क्योंकि जब तक हमारी सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक समृद्धि नैतिकता का सहारा नहीं लेगी, तब तक हमारा कल्याण नहीं हो पायेगा। हमें एक नयी सभ्यता का विकास करना है, जिससे व्यक्ति समाज एवं भौतिक तथा जैविक संसाधन उन्नत किये जा सकें। इन्हीं सारी बातों से उनका नैतिक स्तर उच्च होगा और वे अपने पर्यावरण को भलीभाँति समझ सकगें। अत: माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में पर्यावरण बोध का संचार करने के कई लाभ होंगे– एक तो वे स्वयं सचेत होंगे और

अपने पर्यावरण को संजोये रखने में मदद करेंगे। दूसरे छात्रों के द्वारा हम समाज के प्रत्येक वर्ग को पर्यावरण के प्रति जागरूक बना सकेंगे।

**अध्ययन का महत्व**

किसी भी कार्य को करने के पूर्व उसका महत्व जान लेना आवश्यक होता है। वर्तमान में पर्यावरणीय गुणवत्ता में ह्रास की समस्या ने वैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों एवं शिक्षाविदों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है, जिसके फलस्वरूप इस गंभीर समस्या से निपटने हेतु विविध कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है। इसके अंतर्गत पर्यावरण शिक्षा को पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, जिससे बालकों में बचपन से ही पर्यावरण के प्रति जागरूकता लायी जा सके। परंतु पर्यावरण असंतुलन की समस्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है, जिसका सीधा सा अर्थ है कि अभी लोगों में पर्यावरण के प्रति पूर्ण संचेतनता की अभाव है या फिर वे जानबूझकर पर्यावरण से खिलवाड़ कर रहे है।

पर्यावरण शिक्षा से आशय पर्यावरण को समझना-बूझना तथा जागरूकता को बढ़ावा देना है। यह आदमी और उसके द्वारा की जाने वाली प्रत्येक क्रियाओं से संबंधित है। पर्यावरणीय और उसके घटकों में सुधार, संरक्षण और बचाव के लिए आवश्यक उत्तरदायित्व होना भी इसका एक लक्ष्य है। इसके लिए पर्यावरण शिक्षा की संकल्पना तीन रूपों में की जा सकती है– पर्यावरण के बारे में, पर्यावरण से, पर्यावरण के लिए। अध्ययन हेतु ''माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं में पर्यावरण बोध का तुलनात्मक अध्ययन'' इसलिए चुना गया, क्योंकि वर्तमान समय में माध्यमिक स्तर के छात्रों में पर्यावरण के प्रति लगाव को जानना आवश्यक कार्य हो गया है, आगे चलकर यही छात्र पर्यावरण के बारे में लोगों को जानकारी देने में अधिक मदद करेंगे और पर्यावरण को संरक्षित करने में समाज की भरपूर सहायता भी कर सकेंगे।

**अध्ययन का उद्देश्य**

1. माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के पर्यावरण बोध की जानकारी प्राप्त करना।
2. माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की पर्यावरण बोध के प्रति जागरूकता की तुलना करना।

3. माध्यमिक स्तर के विज्ञान एवं कला वर्ग के शहरी विद्यार्थियों का पर्यावरण के प्रति जागरूकता की तुलना करना।
4. माध्यमिक स्तर के विज्ञान एवं कला वर्ग ग्रामीण विद्यार्थियों का पर्यावरण के प्रति जागरूकता की तुलना करना।
5. माध्यमिक स्तर के शहरी छात्र-छात्राओं के मध्य पर्यावरण बोध के प्रति जागरूकता की तुलना करना।
6. माध्यमिक स्तर के ग्रामीण छात्र-छात्राओं के मध्य पर्यावरण बोध के प्रति जागरूकता की तुलना करना।

## अध्ययन की कार्यविधि

अनुसंधान एक ऐसा व्यवस्थित एवं नियंत्रित अध्ययन है, जिसके अन्तर्गत संबंधित चरों व घटनाओं के पारस्परिक संबंधों का अन्वेषण, संश्लेषण एवं विश्लेषण उपयुक्त सांख्यिकीय विधि तथा वैज्ञानिक विधि के द्वारा किया जाता है। इससे प्राप्त परिणामों से वैज्ञानिक निष्कर्षों, नियमों तथा सिद्धांतों की रचना, खोज व पुष्टि की जाती है। इसका ध्येय वैज्ञानिक ज्ञान की परिधि को अधिक से अधिक विस्तृत तथा विशुद्ध करना होता है, साथ ही उपलब्ध नवीनतम वैज्ञानिक उपकरणों तथा कठोरतम् वैज्ञानिक पद्धतियों द्वारा स्थापित तथ्यों, नियमों तथा सिद्धांतों की विश्वसनीयता, परिशुद्धता तथा वैधता का पुनर्परीक्षण तथा पुष्टिकरण करना होता है। इस प्रकार अनुसंधान द्वारा प्राप्त ज्ञान विशुद्ध संगठित तथा क्रमबद्ध होता है।

## जनसंख्या तथा न्यादर्श

जब कभी किसी जनसंख्या (इकाई, वस्तुओं या मनुष्यों का समूह) में किसी चर का विशिष्ट मान ज्ञात करने के लिए उसकी कुछेक इकाईयों को चुन लिया जाता है, तो इस चुनने की क्रिया को न्यादर्शन कहते है तथा चुनी हुई इकाइयों के समूह को न्यादर्श कहते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में आजमगढ़ जिले के माध्यमिक स्तर के सभी विद्यालयों में पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं को जनसंख्या के रूप में चुना गया है। सभी विद्यालयों में से 6 विद्यालयों का चयन न्यादर्श हेतु न्यादर्शन की यादृच्छिकी विधि से शोधकर्त्ता ने किया। चयनित 6 विद्यालयों में से 300 छात्र-छात्राओं पर यह अध्ययन आधारित है। इन विद्यालयों में से 3 विद्यालय शहरी एवं 3 विद्यालय ग्रामीण अंचल के है।

**तालिका-1**

**छात्र-छात्राओं का न्यादर्श के रूप में चयन**

| | छात्र | छात्राएं | **योग** |
|---|---|---|---|
| शहरी | 90 | 60 | 150 |
| ग्रामीण | 80 | 70 | 150 |
| **योग** | 170 | 130 | **300** |

## प्रयुक्त उपकरण

पर्यावरण बोध स्तर ज्ञात करने के लिए स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है। इस प्रश्वावली में 50 प्रश्न सत्य/असत्य प्रकार के पर्यावरण के पाँच क्षेत्रों से संबंधित हैं, इससे प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण के लिए टी-टेस्ट (t-test) का प्रयोग किया गया है। टी-टेस्ट के लिए प्रयुक्त सूत्र इस प्रकार है–

$$\frac{M_1 \sim M_2}{\sqrt{\frac{\sigma_1^2}{N_1} + \frac{\sigma_2^2}{N_2}}}$$

## आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

वर्गीकृत आंकड़ों के द्वारा मध्यमान तथा मानक विचलन की गणना की गई जिसे निम्नलिखित तालिका में दिखाया गया है–

**तालिका-2**

**ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों का पर्यावरण बोध**

| छात्र/छात्राएं | न्यादर्श का आकार | मध्यमान | मानक विचलन | टी-मान | सार्थकता स्तर |
|---|---|---|---|---|---|
| ग्रामीण | 150 | 35.00 | 9.35 | 5.78 | .01 = 2.59 |
| शहरी | 150 | 40.32 | 6.23 | | .05 = 1.97 |

## प्रदत्तों का विश्लेषण

ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की पर्यावरण बोध संबंधी जानकारी के लिए मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमश: 35.00 और 40.32 तथा मानक विचलन 9.35 और 6.23 है। स्वतंत्रता अंश 298 के लिये टी-मान की गणना की गयी जो कि 5.78 प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता अंश 298 के लिये तालिका में 0.1 स्तर पर तथा .05 स्तर पर टी-मान क्रमश: 2.59 तथा 1.97 है। गणना से प्राप्त मान तालिका से प्राप्त मान से दोनों स्तरों पर अधिक है। अत: ग्रामीण एवं शहरी छात्र/छात्राओं में पर्यावरणीय बोध से संबंधित जानकारी में अंतर सार्थक प्रतीत होता है।

इसी प्रकार शोधकर्त्ता ने उपरोक्त प्रक्रिया को दुहराते हुए विज्ञान एवं कला वर्ग, शहरी विज्ञान एवं कला वर्ग, ग्रामीण-छात्र/छात्राएँ, शहरी तथा छात्र/छात्राएं ग्रामीण के प्राप्तांकों को अलग-अलग करके सभी समूहों की तुलना की है, जो कि निम्नवत है–

**तालिका-3**

**कला एवं विज्ञान वर्ग के शहरी छात्र-छात्राओं का पर्यावरण बोध**

| छात्र/छात्राएं | न्यादर्श का आकार | मध्यमान | मानक विचलन | टी-मान | सार्थकता स्तर |
|---|---|---|---|---|---|
| विज्ञान | 55 | 41.23 | 9.73 | 3.27 | .01 = 2.61 |
| कला | 95 | 36.12 | 8.20 | | .05 = 1.98 |

विज्ञान एवं कला वर्ग के शहरी छात्र/छात्राओं की पर्यावरण संबंधी जानकारी के लिए मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमश: 41.23 और 36.12 तथा 9.37 और 8.20 है। स्वतंत्रता अंश 148 के लिये टी-मान की गणना की गयी जो कि 3.27 प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता अंश 148 के लिए तालिका .01 स्तर तथा .05 स्तर पर टी का मान क्रमश: 2.61 तथा 1.98 है। गणना से प्राप्त मान तालिका से प्राप्त मान से दोनों स्तरों पर अधिक है। अत: विज्ञान एवं कला वर्ग के शहरी छात्र/छात्राओं में पर्यावरण बोध संबंधी जानकारी में अंतर सार्थक है।

**तालिका-4**

**कला एवं विज्ञान वर्ग के ग्रामीण छात्र-छात्राओं का पर्यावरण बोध**

| छात्र/छात्राएं | न्यादर्श का आकार | मध्यमान | मानक विचलन | टी-मान | सार्थकता स्तर |
|---|---|---|---|---|---|
| विज्ञान | 50 | 38.32 | 7.32 | 2.67 | .01 = 2.61 |
| कला | 100 | 35.12 | 6.24 | | .05 = 1.98 |

विज्ञान एवं कला वर्ग के ग्रामीण छात्र/छात्राओं की पर्यावरण संबंधी जानकारी के लिए मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमश: 38.32 और 35.12 तथा 7.32 और 6.24 है। स्वतंत्रता अंश 148 के लिये टी-मान की गणना की गयी जो कि 2.67 प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता अंश 148 के लिए तालिका .01 स्तर पर तथा .05 स्तर पर टी का मान क्रमश: 2.61 तथा 1.98 है। गणना से प्राप्त मान से दोनों स्तरों पर अधिक है। अत: विज्ञान एवं कला वर्ग के ग्रामीण छात्र/छात्राओं में पर्यावरण बोध संबंधी जानकारी में अंतर सार्थक है।

**तालिका-5**

**शहरी छात्र-छात्राओं का पर्यावरण बोध**

| छात्र/छात्राएं | न्यादर्श का आकार | मध्यमान | मानक विचलन | टी-मान | सार्थकता स्तर |
|---|---|---|---|---|---|
| विज्ञान | 90 | 42 | 1.11 | 3.40 | .01 = 2.61 |
| कला | 90 | 37 | 1.06 | | .05 = 1.98 |

शहरी छात्र/छात्राओं की पर्यावरण संबंधी जानकारी के लिए मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमश: 42 एवं 37 तथा 1.11 एवं 1.06 है। स्वतंत्रता अंश 148 के लिये टी-मान की गणना की गयी जो कि 3.40 प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता अंश 148 के लिए तालिका .01 स्तर तथा .05 स्तर पर टी का मान क्रमश: 2.61 तथा 1.98 है। गणना से प्राप्त मान तालिका से प्राप्त मान से दोनों स्तरों पर अधिक है। अत: शहरी बालक एवं बालिकाओं के मध्य पर्यावरण बोध संबंधी जानकारी में अंतर सार्थक है।

**तालिका-6**

**ग्रामीण छात्र-छात्राओं का पर्यावरण बोध**

| छात्र/छात्राएं | न्यादर्श का आकार | मध्यमान | मानक विचलन | टी-मान | सार्थकता स्तर |
|---|---|---|---|---|---|
| विज्ञान | 80 | 32.81 | 7.20 | 2.42 | .01 = 2.61 |
| कला | 70 | 30.20 | 6.21 | | .05 = 1.98 |

ग्रामीण छात्र/छात्राओं की पर्यावरण संबंधी जानकारी के लिए मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमश: 32.81 तथा 30.20 और 7.20 और 6.21 है। स्वतंत्रता अंश 148 के लिये टी-मान की गणना की गयी जो कि 2.42 प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता अंश 148 के लिए तालिका .01 स्तर तथा .05 स्तर पर टी का मान क्रमश: 2.61 तथा 1.98 है। गणना से प्राप्त मान से दोनों स्तरों पर अधिक है। अत: ग्रामीण बालक एवं बालिकाओं के मध्य पर्यावरण बोध संबंधी जानकारी में सार्थक अंतर है।

इस प्रकार तालिका-2 से ज्ञात होता है कि शहरी छात्र/छात्राओं की तुलना में पर्यावरण के प्रति कुछ अधिक सजग है। इसका कारण है कि शहरी छात्रों को स्वछन्दता ग्रामीण छात्रों से ज्यादा होती है और शहरी छात्र/छात्राएं विभिन्न संचार माध्यमों, विभिन्न प्रकार के लोगों के संपर्क में रहने के कारण अपने पर्यावरण के विषय में अधिक जानकारी रखते हैं।

तालिका-3 से ज्ञात होता है कि शहरी विज्ञान एवं कला वर्ग के छात्र/छात्राओं में से विज्ञान वर्ग के छात्र/छात्राओं में पर्यावरण संबंधी जानकारी कला वर्ग के छात्र/छात्राओं से अधिक है। वजह यह है कि विज्ञान विषय पढ़ने वाले विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में अनेक प्रकरण ऐसे होते हैं, जो पर्यावरण के ही घटक होते है जिससे विज्ञान वर्ग के छात्र/छात्राओं को पुस्तकीय ज्ञान के साथ-साथ व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त होता रहता है।

तालिका-4 से ज्ञात होता है कि ग्रामीण विज्ञान एवं कला वर्ग के छात्र/छात्राओं में पर्यावरण बोध संबंधी जानकारी विज्ञान वर्ग से कम है कारण यह है कि कला वर्ग के विद्यार्थियों के लिये माध्यमिक स्तर पर जो सामाजिक विषय रखे गऐ है, उनमें पर्यावरण बोध संबंधी जानकारी का अभाव है। वे कला वर्ग के विद्यार्थियों को मात्र सतही ज्ञान ही प्रदान कर पाते हैं। इसलिए कला वर्ग के विद्यार्थियों के पर्यावरण बोध की जागरूकता के

लिये उसके पाठ्यक्रम में परिवर्तन आवश्यक है कला वर्ग के विद्यार्थियों में पर्यावरण बोध के विषय में आवश्यक है। कला वर्ग के विद्यार्थियों को पर्यावरण बोध के विषय में पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा व्यावहारिक ज्ञान कम देखा गया है।

तालिका–5 के अनुसार शहरी छात्र, शहरी छात्राओं की तुलना में पर्यावरण के संबंध में अधिक जागरूक है, वजह है कि जितनी सुख–सुविधाएं, पत्र–पत्रिकाएं, विभिन्न संचार माध्यमों इत्यादि के द्वारा शहरी छात्रों को जानकारी हो जाती है, उतनी छात्राओं को नहीं हो पाती है।

तालिका–6 के अनुसार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ग्रामीण छात्रों की तुलना में ग्रामीण छात्राओं को सजगता कम हैं। भले ही अन्तर बहुत कम हो।

## शैक्षिक निहितार्थ

प्रस्तुत शोध समस्या के अन्तर्गत कुछ उद्देश्य निर्धारित किये गये थे, जिनमें प्रमुख थे– ग्रामीण एवं शहरी छात्रों तथा छात्राओं में तुलनात्मक रूप से यह पता लगाना कि उनमें पर्यावरण के प्रति कितनी जागरूकता, ज्ञान एवं बोध है? क्या पर्यावरण की शिक्षा ने उनमें पर्याप्त ज्ञान एवं बोध तथा सजगता विकसित की है या नहीं? जिससे वे अपने पर्यावरण के साथ समुचित व्यवहार करके प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग कर सकते हों। सारांशत: शिक्षा जगत में प्रस्तावित शोध का निम्नलिखित योगदान हो सकता है।

1. ग्रामीण क्षेत्र में विद्यार्थियों तथा शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों में पर्यावरण बोध को विकसित करना।
2. ग्रामीण क्षेत्र की लड़कियों एवं शहरी क्षेत्र की लड़कियों में पर्यावरण के स्तर को ऊँचा उठाना।
3. पर्यावरण के प्रति जागरूकता के मापन के माध्यम से न केवल माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में पर्यावरणीय रुचि तथा जिज्ञासा उत्पन्न की जा सकती है, बल्कि उनके भावी जीवन में पर्यावरण संबंधी समस्याओं के समाधन हेतु वनों के महत्व को भी समझाया जा सकता है।
4. पर्यावरणीय शिक्षा को विभिन्न स्तरों के पाठ्यक्रमों में समाहित कर छात्रों को पर्यावरण के प्रति समालोचक प्रवृत्ति प्रदान की जा सकती है।

5. पर्यावरणीय बोध के माध्यम से समाज के सभी वर्गों को पर्यावरण के संरक्षण एवं विकास हेतु जागरूक बनाया जा सकता है।
6. इस अध्ययन के द्वारा समाज के बड़े, मध्यम तथा निम्न वर्गों में एक नयी संस्कृति ''पर्यावरणीय संरक्षण संस्कृति'' का विकास किया जा सकता है।
7. पर्यावरण प्रदूषण को दूर करने के लिए विकल्पों का प्रयोग छात्रों के द्वारा कराया जा सकता है (जैसे– विद्यालय में प्रोजेक्ट, सेमिनार, सर्वेक्षण आदि आयोजित करना।)
8. अपनी परम्परा से जुड़कर प्रदूषण उद्योग, चिकित्सा रहन-सहन, स्वास्थ्य आदि अनेकानेक समस्याओं को पर्यावरणीय बोध के माध्यम से पूर्ण करना।
9. पर्यावरण को स्वार्थ सिद्ध हेतु विनिष्ट करने वाले लोगों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता का मापन करके उनमें नयी चेतना का विकास करना।
10. अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रदूषण फैलाने वाले विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों पर आरोप लगाने का तर्कयुक्त प्रत्युत्तर देने व समाधन करने में सहायता करना।

## संदर्भ


सिंह, सविन्द्र (1991) : *''पर्यावरण भूगोल''*, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद

रघुवंशी, अरुण एवं रघुवंशी चन्द्रलेखा (1995) : *''पर्यावरण तथा प्रदूषण''*, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल

ओझा, एस.एस. एवं मिथलेश कुमार (1994) : *''भारत में पर्यावरण संरक्षण के उपायों की समीक्षा''*, पर्यावरण दर्शन का संगोष्ठी अंक-अप्रैल

वेस्टर, फ्रेडरिक (1991) : *''पर्यावरण और हम''*, कुरुक्षेत्र अंक-8 जून

सिंह, सीमा (1988) : *''धरती के सुरक्षा कवच पर मंडराता खतरा''*, क्रॉनिकल

बहुगुणा, सुन्दर लाल (1984) : राष्ट्रीय संदर्भ में पर्वतीय विकास योजना

सिंह, डी.पी. (2000) : नई सहस्त्राब्दि में उद्योग एवं पर्यावरण शिक्षा, दैनिक जागरण, 29 जनवरी

तिवारी, कृपाशंकर (1988) : *''प्लास्टिक कचरा : बढ़ता हुआ खतरा''*, योजना फरवरी

चौरसिया, रामआसरे (1992) : *''पर्यावरण प्रदूषण एवं प्रबंधन''*, वोहरा पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 15, अंक 2, अगस्त 2008

*शोध टिप्पणी/संवाद*

# प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता

## कक्षा पांच में अध्ययनरत शहरी/ग्रामीण विद्यार्थियों का गणित एवं हिंदी विषयों में उपलब्धियों का तुलनात्मक अध्ययन

**रमा मैखुरी***

बच्चे के व्यक्तित्व के संपूर्ण विकास में प्राथमिक शिक्षा का एक महत्वपूर्ण योगदान है,क्योंकि प्राथमिक शिक्षा की सहायता से बच्चे में देश के, परिवार के, समाज के प्रति दायित्व बोध एवं अपने भविष्य के लिए आत्मनिर्भरता, लक्ष्य निर्धारण एवं निर्णय लेने की प्रवृत्ति का विकास होता है। 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए नि:शुल्क अनिवार्य तथा जीवनोपयोगी प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करने संबंधी संवैधानिक प्रतिबद्धता के अनुसरण में सर्वसुलभ प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान स्वतंत्रता प्राप्ति से ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति की मुख्य विशेषता रही है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत शिक्षा की संरचना में मजबूती और उसके सार को विशाल और विस्तृत करने हेतु सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं राज्य/केंद्र स्तर पर, विभिन्न कार्यक्रमों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। ताकि शिक्षा के प्रवेश द्वार, शिक्षा की आधारशिला, साक्षरता की रीढ़ को मजबूत किया जा सके।

इस योजनाओं में राज्य स्तर में प्रारंभिक शिक्षा के क्षेत्र में सर्व शिक्षा अभियान, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम, विकलांग बच्चों के लिए समेकित शिक्षा कार्यक्रम (Intrgrated Education Programme) बालिकाओं की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम (एन.पी.ई.जी.ई.एल.) आदि संचालित किये जा रहे हैं, जिनका उद्देश्य है :

* उपाचार्य, हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड

- सबके लिए शिक्षा उपलब्धता,
- नामंकनता में वृद्धि औसत,
- नामांकित बच्चे का विद्यालय में लक्ष्य को पूर्ण करना,
- गुणवत्तायुक्त शिक्षा प्रदान करना,
- ड्राप-आउट लैंगिक असमानता, सामाजिक वर्गों में असमानता को समाप्त करना।

वर्ष 2001 की जनगणना यह प्रदर्शित करती है कि शैक्षिक लैंगिक भेद राज्य के लिए अभी भी चुनौती बना हुआ है।

सभी के लिए शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डी.पी.ई.जी.) का राज्य में संचालन किया गया जिसका लक्ष्य जनपदों में निम्नलिखित उद्देश्श्यों की प्राप्ति रहा :

- नामांकन, सम्प्राप्ति और ड्राप आउट में लैंगिक तथा सामाजिक वर्गों के अंतर को 5 प्रतिशत तक कम करना;
- सभी विद्यार्थियों के लिए प्राथमिक कक्षाओं में ड्राप आउट की दर को 10 प्रतिशत से कम करना;
- प्राथमिक विद्यालयों के सभी छात्रों की औसत सम्प्राप्ति को प्रथम वेसलाइन सर्वेक्षण में मापित सारों में कम से कम 25 प्रतिशत की वृद्धि करना तथा भाषा व गणित की आधारिक दक्षताओं की सम्प्राप्ति सुनिश्चिय करना तथा अन्य दक्षताओं में 40 प्रतिशत सम्प्राप्ति स्तर निश्चित करना;
- सभी बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा की पहुंच उपलब्ध कराने हेतु मानकानुसार प्राथमिक विद्यालयों अथवा इसके समकक्ष वैकल्पिक शिक्षा केंद्रों की व्यवस्था करना।

प्राथमिक शिक्षा के लिए नियोजन, प्रबन्धन और मूल्यांकन के लिए क्षमता का सम्वर्द्धन करना सर्व शिक्षा अभियान राज्य की भागीदारी से समयबद्ध, समेकित प्रयास द्वारा शिक्षा को जन-जन तक पहुंचाने की दिशा में एक ऐतिहासिक एवं सार्थक प्रयास है। यह क्रमशः चमोली, देहरादून, पौढ़ी, रुद्रप्रयाग, उधमसिंहनगर, नैनीताल, अल्मोड़ा जनपदों में

कक्षा 1–8 तक संचालित किया जा रहा है। इस संचालन का लक्ष्य हैं :

- सभी बच्चों के लिए वर्ष 2003 तक स्कूल, शिक्षा गारंटी केंद्र, वैकल्पिक स्कूल एवं वैक टू स्कूल शिविर की उपलब्धता।
- 2007 तक सभी बच्चे शिक्षा पूर्ण कर लें।
- 2010 तक वर्ष की स्कूली शिक्षा पूर्ण कर लें।
- जीवनोपयोगी शिक्षा को विशेष महत्व।
- लैंगिक असामानता, सामाजिक वर्ग भेद को वर्ष 2007 तक प्राथमिक स्तर तक और वर्ष 2010 तक प्रारंभिक स्तर पर समाप्त करना।
- वर्ष 2010 तक सभी बच्चों की स्कूल में बनाये रखना।

उपर्युक्त गतिविधियों के अलावा प्राथमिक शिक्षा में बढ़ोत्तरी, विकास एवं ''प्राथमिक शिक्षा प्रत्येक बच्चे का मूल अधिकार है'' उद्देश्य की प्राप्ति हेतु आपरेशन, ब्लैक बोर्ड, बेसिक शिक्षा परियोजना, मध्याह्न भोजन योजना, डी.पी.ई.पी., एस.एस.ए. शिक्षा गारंटी योजना (ई.जी.एस.) वैकल्पिक एवं नवाचारी शिक्षा केंद्र (ए.आई.ई.) निर्माण कार्य, बालिका शिक्षा (एल.पी.ई.पी.जी.ई.एल.) कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय (के.पी.वी. वी.) नवाचारी कार्यक्रम (बालिका) (शिशु) (अनुसूचित जाति, जनजाति) कम्प्यूटर एवं लर्निंग प्रोग्राम, समेकित शिक्षाा, नि:शुल्क पाठ्यपुस्तक, शिक्षक प्रशिक्षण, अनुश्रवण (पी.एच.आई.एल.) सीमेट, को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। सरकार की तमाम कोशिशों के बावजूद यदि देखें तो नवनिर्मित उत्तराखंड राज्य के सभी जनपदों में प्राथमिक स्कूलों की संख्या में उम्मीद से बढ़कर वृद्धि हुयी। विद्यालयों में सुविधाएं मुहिम कराने का प्रयास भी तेजी से हुआ लेकिन शिक्षा का मूल आधार'गुणवत्ता' जो कि सभी योजनाओं परियोजनाओं कार्यक्रमों का मुख्य आधार हैं। उसमें सुधार हुआ, क्योंकि उत्तराखंड के 75 प्रतिशत भी अधिक प्राथमिक विद्यालय आज भी ग्रामों में स्थित हैं। क्या सरकार की सुविधाएं उनकी उपलब्धियों को साकार कर रही हैं। जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम का उद्देश्य विद्यालयों द्वारा प्राप्त किया जा रहा है, इन्हीं सभी कारणों एवं उनके द्वारा प्राप्त निष्कर्षों से भाषा एवं गणित जैसे विषयों में कैसे बच्चों में रुचि उत्पन्न की जाय, की जानकारी प्राप्त हेतु उपर्युक्त विषय को शोध हेतु चुना गया है।

उपर्युक्त अध्ययन से पूर्व में हुए अध्ययनों से बुक एवं टकर 1976 ने अपने अध्ययन में पाया कि लड़कियों का शब्द भण्डार औसत रूप से अधिक पाया गया। कुलकर्णी 1970, दूबे एवं सहयोगियों 1988 में 22 राज्यों के सर्वेक्षण के दौरान निष्कर्ष निकाला कि कक्षा 1 से 4 तक छात्र/छात्राओं की उपलब्धि स्तर में अत्याधिक अंतर पाया जाता है। यह अंतर भाषा एवं गणित में और भी स्पष्ट है। शुक्ला (1993) ने कक्षा 4 के छात्र-छात्राओं की भाषा गणित की उपलब्धि में अंतर पाया। लेनवर्ग (1957) ने अपने निष्कर्ष में पाया कि भाषा अधिगम में व्यक्तिगत विभिन्नताएं पायी जाती हैं। प्रेस्टन 1962 ने चौथी एवं पांचवी कक्षा में पढ़ने वाले अमेरिकन एवं जर्मन विद्यार्थियों के अध्ययन में यह पाया कि अमेरिकन लड़कियाँ लड़कों की तुलना में श्रेष्ठ हैं। जर्मन विद्यार्थियों के संदर्भ में लिंगवत अंतर विपरीत दिशा में पाया गया।

एन.सी.ई.आर.टी. (1995) के सर्वेक्षण के अनुसार उपलब्धि में लैंगिग विषमता शासकीय प्राथमिक विद्यालयों में अशासकीय विद्यालयों की अपेक्षा अधिक है।

### अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तुत अध्ययन में उत्तरांचल राज्य के जनपद पौड़ी के दो प्रमुख विकासखंड कोट एवं पौड़ी के शहरी एवं नगरीय प्राथमिक विद्यालयों के कक्षा पांच के विद्यार्थियों को लिया है।

### न्यादर्श

न्यादर्श का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया है। न्यादर्श में छात्र/छात्राओं की संख्या 120.से 150 थी । अध्ययन हेतु 12 प्राथमिक विद्यालयों (शहरी/ग्रामीण) को लिया गया है।

### उपकरण

उपकरण हेतु वार्षिक परीक्षा में गणित/भाषा विषयों के औसत प्राप्तांकों को इन विषयों में छात्रों की उपलब्धि माना गया। ये प्राप्तांक संबंधित विद्यालयों के रिकार्ड से ज्ञात किये गये।

### आंकड़ों का विश्लेषण

न्यार्दश से सम्बंधित छात्र/छात्राओं के कक्षा 5 के गणित एवं हिंदी के प्राप्तांकों को प्रतिशत में बदल दिया गया। इन्हें समग्र रूप में शैक्षणिक उपलब्धि माना गया। समग्र शैक्षणिक

उपलब्धि को तीन स्तरों में विभाजित किया गया।

55 प्रतिशत से अधिक – उच्च शैक्षणिक स्तर

45 प्रतिशत से 55 प्रतिशत – मध्यम श्रेणी स्तर तक

45 प्रतिशत से कम – निम्न शैक्षणिक स्तर

**उद्देश्य**

1. प्राथमिक शिक्षा स्तर पर कक्षा 5 के छात्र/छात्राओं की उपलब्धि का मापन विशेषकर संख्यात्मक (गणित) व भाषागत (हिंदी) कौशलों के संदर्भ में।
2. विशेषकर ग्रामीण/शहरी क्षेत्र में छात्र/छात्राओं की उपलब्धि का अध्ययन।

**परिकल्पना**

- शहरी और ग्रामीण क्षेत्र के छात्र/छात्राओं की उपलब्धि में कोई अंतर नहीं है।
- उच्च, मध्यम, निम्न शैक्षणिक उपलब्धि के स्तर पर ग्रामीण व शहरी छात्रों में कोई अंतर नहीं है।

**तालिका-1**

**ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों के छात्र/छात्राओं के उच्च वर्ग की भाषागत (हिंदी) उपलब्धि**

| | (ग्रामीण) छात्र/छात्रा | (शहरी) छात्र/छात्रा |
|---|---|---|
| मध्यमान | 71.76 | 73.30 |
| मानक विचलन | 12.59 | 12.29 |
| टी का मान | 0.470 | — |

डी. आफ फ्रीडम – 59

अपेक्षित टी का मान – 2.00

सार्थकता स्तर पर – 0.50

तालिका के अनुसार 59 डी. एफ तथा 5 प्रतिशत सार्थकता स्तर पर टी का मान 2. 00 है परंतु गणना के आधार पर टी का मान केवल 0.470 है जो कि टी के अपेक्षित मान से कम है। अत: ग्रामीण/शहरी छात्र/छात्राओं के उच्च वर्ग की भाषागत उपलब्धि में अंतर नहीं है।

राजपुतोदेवी के 1985 के अध्ययन में लड़के/लड़कियों के भाषागत उपलब्धि में अंतर नहीं है। मैक्करी एवं इरविन 1953, मैम्पसन 1956, वर्की 1958, मेनयुक 1963 के अध्ययनों में भी लैंगिक अंतर नहीं पाया गया।

**तालिका-2**

**ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों के छात्र/छात्राओं के मध्यम वर्ग की भाषागत (हिंदी) उपलब्धि**

| | (ग्रामीण) छात्र/छात्रा | (शहरी) छात्र/छात्रा |
|---|---|---|
| मध्यमान | 39.07 | 52.4 |
| मानक विचलन | 0.51 | .54 |
| टी का मान | 12.69 | — |

डी. आफ फ्रीडम - 23

अपेक्षित टी का मान - 2.06

सार्थकता स्तर पर - 0.50

गणना के आधार पर टी का मान 12.69 है, जो कि टी के अपेक्षित मान से बहुत अधिक है। अत: ग्रामीण/शहरी छात्र/छात्राओं के मध्यम वर्ग की हिंदी उपलब्धि में सार्थक अंतर है। इस प्रकार परिकल्पना अस्वीकृत होती है, मैपकार्डो (1954) टैम्पलिन(1957) ने लड़कियों को सामान्य भाषा विकास एवं वाचिक कौशल में लड़को की अपेक्षा श्रेष्ठ पाया।

**तालिका-3**

**ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों के छात्र/छात्राओं के निम्न वर्ग की भाषागत (हिंदी) उपलब्धि**

| | (ग्रामीण) छात्र/छात्रा | (शहरी) छात्र/छात्रा |
|---|---|---|
| मध्यमान | 24.83 | 25.30 |
| मानक विचलन | 5.72 | 6.16 |
| टी का मान | 2.04 | — |

डी. आफ फ्रीडम – 32

अपेक्षित टी का मान – 2.04

सार्थकता स्तर पर – 0.50

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि ग्रामीण छात्र/छात्राओं के निम्न वर्ग की हिंदी उपलब्धि में बहुत कम अंतर है। अत: परिकल्पना अस्वीकृत होती है। प्रेस्टन (1962) में कक्षा चौथी और कक्षा पांचवी में पढ़ने वाले अमेरिकन एंव जर्मनी विद्यार्थियों के अध्ययन में पाया कि अमेरिकन लड़कियां लड़कों की तुलना में वाचिक कौशल में अधिक श्रेष्ठ हैं।

उपर्युक्त निष्कर्ष से स्पष्ट है कि ग्रामीण विद्यालय की तुलना में शहरी विद्यार्थियों की भाषागत उपलब्धि अधिक श्रेष्ठ है। जैन एवं अरोड़ा (1995) ने अपने शोध में सही पाया कि निर्देशन एवं अध्ययन काफी हद तक उपलब्धि सार को प्रभावित करता है। इसका अभाव प्राय: ग्रामीण विद्यालयों में पाया गया।

**तालिका-4**

**ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों के छात्र/छात्राओं के उच्च वर्ग की भाषागत (गणित) उपलब्धि**

| | (ग्रामीण) छात्र/छात्रा | (शहरी) छात्र/छात्रा |
|---|---|---|
| मध्यमान | 24.83 | 25.30 |
| मानक विचलन | 5.72 | 6.16 |
| टी का मान | 2.04 | — |

डी. आफ फ्रीडम – 51
अपेक्षित टी का मान– –2.01
सार्थकता स्तर पर –0.50

टी तालिका के अनुसार 51 डी. एफ तथा 5 प्रतिशत सार्थकता स्तर पर ही टी का मान 2. 01 है परंतु गणना के आधार पर टी का मान केवल 0.353 है जो कि टी के अपेक्षित मान से कम है। अत: छात्र/छात्राओं में सार्थक अंतर नहीं है। इस तरह परिकल्पना स्वीकृत होती है । साइमन्स (1981) के शोध निष्कर्ष के अनुसार पुस्तकों की उपलब्धता सामाजिक, आर्थिक स्थिति का संबंध उच्च उपलब्धि स्तर से है। अभिभावकों की सक्रियता भी उपलब्धि पर धनात्मक प्रभाव डालती है।

**तालिका–5**
**शहरी/ग्रामीण विद्यालयों के छात्र/छात्राओं के मध्यम वर्ग की संख्यात्मक उपलब्धि**

| | (ग्रामीण) छात्र/छात्रा | (शहरी) छात्र/छात्रा |
|---|---|---|
| मध्यमान | 48.38 | 49.00 |
| मानक विचलन | 2.48 | 1.13 |
| टी का मान | 0.250 | — |

डी. आफ फ्रीडम – 20
अपेक्षित टी का मान – 2.09
सार्थकता स्तर पर – 0.50

उपर्युक्त आंकड़ें स्पष्ट करते हैं कि संख्या दृष्टि से ग्रामीण/शहरी छात्र/छात्राओं की मध्यम वर्ग की उपलब्धि में अंतर नहीं है। परिकल्पना स्वीकृत है। सिंह एवं सक्सेना (1995) ने अपने शोध में यही पाया कि छात्र/छात्राओं की उपलब्धि माता पिता की शिक्षा व्यवसाय, शिक्षण संस्थाओं की परिस्थितियां जैसे गृह कार्य, निर्देशन, परीक्षण, पृष्ठ पोषण, अभिभावकों की सक्रिय भागीदारी में सहायक होती है जो लैंगिक, सामाजिक असमानता को दूर करती है।

**तालिका-6**

**ग्रामीण/शहरी विद्यालयों के छात्र/छात्राओं को निम्न वर्ग की संख्यात्मक (गणित) उपलब्धि**

| | (ग्रामीण) छात्र/छात्रा | (शहरी) छात्र/छात्रा |
|---|---|---|
| मध्यमान | 37.58 | 38.81 |
| मानक विचलन | 3.71 | 8.21 |
| टी का मान | 0.68 | — |

डी. आफ फ्रीडम - 43
अपेक्षित टी का मान - 2.02
सार्थकता स्तर पर - 0.50

टी तालिका के अनुसार 43 डी. एफ तथा 5 प्रतिशत सार्थकता स्तर पर टी का अपेक्षित मान 2.02 है परंतु गणना के आधार पर टी का मान 0.68 है जो कि टी के अपेक्षित मान से कम है। अत: ग्रामीण/शहरी छात्र/छात्राओं के निम्न वर्ग की संख्यात्मक (ग्रामीण) उपलब्धि में कोई अंतर नहीं है। इस प्रकार परिकल्पना स्वीकृत होती है। नागपाल शकुन्तला (1995) ने अपने शोध प्राथमिक विद्यालयों में बच्चों की गणित में उपलब्धियां और अधिगम पर प्रकाश डालते हुये विद्यालयी वातावरण एवं अच्छी शिक्षण अधिगम परिस्थितियों को उपलब्धियों का आधार माना है।

**अध्ययन से प्राप्त मुख्य तथ्य**

- ग्रामीण/शहरी छात्र/छात्राओं की उपवर्ग श्री भाषागत उपलब्धि में कोई अंतर नहीं पाया गया।
- अध्ययन में यह भी प्राप्त किया गया कि शहरीछात्र/छात्राओं के मध्यम वर्ग की उपलब्धि ग्रामीण छात्र/छात्राओं से उच्च है।
- निम्न वर्ग की भाषागत उपलब्धि में दोनों वर्गों के मध्य केवल –01 का अंतर पाया गया।
- इसी प्रकार संख्यात्मक (गणित) उपलब्धि के तीनों वर्गों, उच्च, मध्यम, निम्न में ग्रामीण एवं शहरी छात्र/छात्राओं के मध्य कोई अंतर नहीं पाया गया।

## निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध से जो निष्कर्ष प्राप्त हुआ उसने इस तथ्य को साकार कर दिया कि जनपद में विद्यालयों में संख्या वृद्धि के साथ-साथ उसमें गुणवत्ता का विकास भी हो रहा है। प्राथमिक स्तर पर विभिन्न विषयों में भाषा एवं गणित विषयों के प्रति छात्रों में रूचि का विकास हो रहा है जो सरकार द्वारा दिये जा रहे विभिन्न प्रोत्साहन शिक्षा विभाग के अनुकूलित वातावरण एवं राष्ट्रीय नीतियों के प्रभाव को स्पष्ट कर रहा है।

सर्व शिक्षा अभियान के तहत असेवित बस्तियों में नवीन प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना जहां कम से कम दो शिक्षकों की व्यवस्था की गयी है शिक्षा की गुणवत्ता की वृद्धि में सहायक सिद्ध हुयी है। जनपद के सभी प्राथमिक विद्यालयों की नियमित मरम्मत एवं रखरखाव, पेयजल, शौचालय की व्यवस्था जिसने छात्रों के नामांकन ही में नहीं बल्कि उनकी शैक्षिक उपलब्धि की वृद्धि में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रत्येक विद्यालय के विकास हेतु सर्व शिक्षा अभियान ने रु. 2000/- का अनुदान एवं शिक्षण अधिगम सामग्री हेतु 500/रु. का अनुदान प्रतिवर्ष निश्चित कर शिक्षा के स्तर को ऊंचा उठाने का प्रयास किया है।

इसके अलावा प्राथमिक परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के लिए राज्य संदर्भ समूहों के सदस्यों द्वारा प्रशिक्षण पैकेज तैयार किये गये हैं जिनमें पाठ्य वस्तु में कठिन निवारण हेतु एन.सी.ई.आर.टी. एवं राष्ट्रीय स्तर के विशेषज्ञों के निर्देशन में भाषा, गणित, पर्यावरणीय शिक्षा, बालिका शिक्षा पैकेज का निर्माण किया गया। इस प्रशिक्षण पैकेज में विषयवार निम्नलिखित माड्यूल विकसित किये गये हैं :

विषय - माड्यूल (विचार पत्रक)

भाषा - वर्तनी, उच्चारण दोष

- सुलेख
- विराम एवं लिपि चिह्नों का प्रयोग
- संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया विशेषण
- उपसर्ग, प्रत्यय

गणित – स्थानीय मान
- लघुतम समापवर्त्य, महत्तम समापवर्त्य
- मिश्रित संक्रियाएं
- भिन्न
- दशमलव
- लाभ–हानि
- प्रतिशत
- मूल आकृतियाँ
- गणित का अनुश्रवण

- इस माड्यूल के अंतर्गत डी.पी.ई.पी. जनपदों के लिए 39 मास्टर ट्रेनरों को प्रशिक्षित किया गया है।
- मास्टर ट्रेनर द्वारा प्रत्येक विकासखण्ड के चयनित प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को संसाधन व्यक्ति के रूप में प्रशिक्षित किया गया है।
- प्रशिक्षित रिसोर्स पर्सन के द्वारा ब्लाक स्तर पर शिक्षकों का प्रशिक्षण प्रारंभ कर दिया गया है।

उतराखंड सरकार द्वारा इन सभी प्रयासों के पीछे शिक्षा का मुख्य द्वार प्राथमिक शिक्षा को राष्ट्र का प्रमुख मिशन बनाकर, भारत के 6–14 साल के सभी बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान कर शिक्षा की गुणवत्ता को आगे बढ़ाना है।

## संदर्भ

एन.सी.ई.आर.टी. (1995) *भारतीय शिक्षा सांख्यिकी सर्वेक्षण*, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली।

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम उत्तरांचल, (2003–04) वार्षिक आख्या, देहरादून।

टैम्पलिन एम.सी. (1957) *बच्चों में निश्चित भाषा कुशलता* (चिल्ड्रन इंस्टीट्यूट ऑफ चाइल्ड वैलफियर मोनोग्राम–3)

प्राथमिक विद्यालयों के वर्ष (2004–05) के वार्षिक परीक्षा परिणाम से संबंधित रिकार्ड।

प्रेस्टन आर.सी. (1962) जर्मन और अमेरिकन बच्चों की पढ़ने की उपलब्धियाँ ।

नागपाल शकुन्तला (1995) *प्राथमिक विद्यालयों में बच्चों की गणित में उपलब्धियाँ और अधिगम।*

सिंह, सतवीर, सक्सेना (1995) *उपलब्धियों की विभिन्नता और स्कूली प्रभाव, भारतीय शिक्षा समीक्षा विशिष्ट और संख्या* 1995, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली।

शुक्ला, नीरजा (1993) *प्रयोगिक अनौपचारिक शिक्षा केंद्र,* एन.सी.ई.आर.टी. (1979-82)सर्वे रिपोर्ट।

सर्व शिक्षा अभियान उतरांचल, वार्षिक आख्या (2003-04) देहरादून।

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 15, अंक 2, अगस्त 2008

*शोध टिप्पणी/संवाद*

# माध्यमिक विद्यालयों के प्रशासकों पर व्यावसायिक दबाव और उनका मानसिक स्वास्थ्य

**एस.पी. गुप्ता* और सुजीत कुमार****

शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा के अनुकूल वातावरण बनाने का कार्य प्रधानाचार्य/प्रधानाचार्याओं के द्वारा अपने सहयोगियों के सहयोग से किया जाता है। प्रधानाचार्य/प्रधानाचार्याओं को जिसे सामान्यत: विद्यालय के प्रशासक के अर्थ में लिया जाता है, विद्यालयों का वह अंग है जिसके द्वारा उस विद्यालय के विभिन्न गतिविधियों को सम्पादित किया जाता है। विद्यालय प्रशासक का संबंध प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से क्रियाओं के समन्वय से रहता है। विद्यालय प्रशासक अपने प्रशासन के द्वारा शिक्षक, कर्मचारियों तथा छात्रों के मध्य सामंजस्य स्थापित करता है तथा शैक्षिक क्रियाकलापों का इस प्रकार से आयोजन करने की कोशिश करता है कि छात्रों में मानवीय गुणों का विकास प्रभावशाली ढंग से हो सके तथा विद्यालय अपने निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति करने में सफल हो सके। इस प्रकार शिक्षा प्रक्रिया में प्रशासकों का स्थान भी अत्यंत महत्वपूर्ण होता है।

जनसंख्या में अत्याधिक वृद्धि होने के कारण शिक्षा की मांग बढ़ी है, जबकि उस अनुपात में शिक्षण संस्थाओं से जुड़ी अन्य मूलभूत साधनों में वृद्धि नहीं हुई है। इसके कारण विद्यालयों पर प्रशासकों पर छात्रों की संख्या और उससे उत्पन्न चुनौतियों का बोझ दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। विद्यालयों में छात्रों की संख्या अत्याधिक होने के कारण शैक्षिक वातावरण नीरस होने लगा है। इस कारण से प्रशासकों के ऊपर समाज के द्वारा तथा विद्यालय में शिक्षकों एवं कर्मचारियों के द्वारा सुविधाओं को बढ़ाने का दबाव अत्याधिक देखा जा सकता है। ऐसे में माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत प्रशासकों में

* अध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, उ.प्र. राजर्षि टण्डन, मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
** प्रवक्ता, शिक्षा संकाय, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

तनाव, कुण्ठा, दबाव आदि के कारण समायोजन की परेशानी देखी जा सकती है जो उनके मानसिक स्वास्थ्य पर विषम प्रभाव डाल रही है।

शोध अध्ययन के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि विदेशों में मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित कुछ शोध हुए हैं किंतु वे शोध शिक्षा प्रशासकों से संबंधित नही थे जबकि भारत में प्रशासकों एवं व्यावसायिकों के मानसिक स्वास्थ्य के ऊपर कुछ कार्य हुए हैं। मोहन्थी ने अपने अध्ययन के द्वारा पब्लिक और प्राईवेट सेक्टर के एग्जक्यूटिव्स में मानसिक स्वास्थ्य और व्यावसायिक दबाव के संबंधों को कार्यदबाव व संगठनात्मक सपोर्ट के संदर्भ में ज्ञात किया। महापात्र ने व्यावसायिकों के कार्य दबाव, मानसिक स्वास्थ्य व सह-अनुकूलन का अध्ययन संवेगों, दबाव-अप्रसन्नता आदि के संदर्भ में किया है।

अत: उपरोक्त शोध अध्ययनों के सर्वेक्षण के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रशासकों के व्यक्तित्व का मानसिक स्वास्थ्य के संदर्भों में अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उपयोगी हो सकता है। वर्तमान समय में मानसिक स्वास्थ्य के अध्ययन की आवश्यकता इस दृष्टि से है कि विद्यालयों में कार्यरत प्रधानाचार्य के संपूर्ण व्यक्तित्व, व्यवहार आदि का समाज पर केवल सकारात्मक प्रभाव पड़े तथा प्रशासक समाज द्वारा परिवर्तित दशाओं का सामना करने में मनोवैज्ञानिक रूप से सक्षम हो सके जिससे उनका मानसिक संतुल बना रहे और वह सुख तथा संतोष की प्राप्ति का अनुभव कर सके।

**उद्देश्य**

1. प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य का मापन करना।
2. प्रशासकों के व्यक्तित्व कारकों का मापन करना।
3. प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य का व्यक्तित्व कारकों के मध्य संबंध ज्ञात करना।

**परिकल्पनाएं**

अध्येय समस्या के उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत शोध अध्ययन में निम्नलिखित परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है :

1. पुरुष एवं महिला प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अंतर है।
2. पुरुष एवं महिला प्रशासकों के व्यक्तित्व कारकों में सार्थक अंतर है।
3. पुरुष प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य का व्यक्तित्व कारकों से सार्थक संबंध है।

4. महिला प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य का व्यक्तित्व कारकों से सार्थक संबंध है।

## चरों की परिभाषा

**मानसिक स्वास्थ्यः** प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता ने मानसिक स्वास्थ्य में निम्नलिखित लक्षणों को समाहित किया है– (1)नियमित दिनचर्या, (2) समायोजन, (3) संवेगात्मक परिपक्वता, (4)स्वमूल्यांकन, (5) स्वप्रत्यय, (6)अच्छा शारीरिक स्वास्थ्य, (7)संतुष्टि, (8)जीवन का एक स्पष्ट सिद्धांत, (9)चिंता रहित और (10) अंतर्द्वन्द्वरहित।

**व्यक्तित्व :** प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता आर.बी. कैटल के व्यक्तित्व के शीलगुण सिद्धांत के द्वारा प्रस्तुत 16 द्विध्रुवीय कारकों को व्यक्तित्व के अंतर्गत समाहित किया है। **कारक 'ए'** – एकांकी : उत्साही, **कारक–'बी' :** कम बुद्धिमान : अधिक बुद्धिमान, **कारक 'सी'** संवेगात्मक : स्थिर, **कारक 'ई'** – नम्र : दृढ़, **कारक 'एफ'** – सौम्य : हंसमुख, **कारक 'जी'** – सांसारिकः आध्यात्मिक, **कारक 'एच'**– संकोची : सामाजिक, **कारक 'आई'** – निष्ठुर : संवेदनशील, **कारक 'एल'** विश्वस्त : शंकालु, **कारक 'एम'** – यर्थावादी : कल्पनावादी, **कारक 'एन'** – सामान्य – व्यवहारकुशल, **कारक 'क्यू1'** : रूढ़िवादी–आधुनिक, **कारक 'क्यू2'** : समूह नियंत्रित : स्व आध ाारित, **कारक 'क्यू3'** – अंतर्द्वन्द्वीः नियंत्रित, **कारक 'क्यू4'**– तनावमुक्तः तनावयुक्त!

## अध्ययन की परिसीमाएं

शोधकर्त्ता को उपलब्ध समय व संसाधनों को दृष्टिगत रखते हुए शोध के विषय क्षेत्र को सीमीति करना होता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन निम्नांकित परिसीमाओं के अंतर्गत सम्पन्न किया गया है:

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन इलाहाबाद जिले के माध्यमिक विद्यालयों के प्रशासकों पर किया गया है।
2. प्रस्तुत शोध अध्ययन केवल उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद से संबंधित माध्यमिक विद्यालयों पर ही किया गया है।
3. प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त शोध परिणाम केवल 50 प्रशासकों (32 पुरुष प्रधानाचार्य एवं 18 महिला प्रधानाचार्य) के द्वारा प्रदत्त आंकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण पर आधारित है।

इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य यह जानना है कि प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य का व्यक्तित्व स्तर के साथ क्या संबंध है। इसके अतिरिक्त मानसिक स्वास्थ्य का लिंगभेद के अनुसार तुलना करना भी प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य है।

इलाहाबाद जिले में स्थित इन सभी 272 शासकीय/अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत प्रशासकों को प्रस्तुत शोध अध्ययन में अध्ययन की जनसंख्या के रूप में परिभाषित किया गया है। प्रतिदर्श के रूप में 32 पुरुष प्रधानाचार्य एवं 18 महिला प्रधानाचार्य को यादृच्छिक विधि से चुना गया है।

**तालिका-1 : प्रतिदर्श**

| स्तर | पुरुष | महिला | योग |
|---|---|---|---|
| प्रधानाचार्य | 32 | 18 | 50 |

उपकरण शोध अध्ययन में समंकों के संकलन हेतु प्रो. एस.पी. गुप्ता एवं डॉ. सुजीत कुमार द्वारा निर्मित मानसिक स्वास्थ्य मापनी एवं आर.बी. कैटल का एस.डी. कपूर एवं वी.के.डी. त्रिपाठी द्वारा हिन्दी अनुशीलन किया गया। 16 पी.एफ. प्रश्नावली फार्म का प्रयोग किया।

## सांख्यिकीय प्रविधियाँ

इन सभी परिकल्पनाओं के परीक्षण के लिए टी परीक्षण एवं गुणनफल आघूर्ण सहसंबंध विधि का प्रयोग किया गया है।

## खण्ड 1 - पुरुष एवं महिला प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य की तुलना

प्रस्तुत खण्ड में आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करके पुरुष एवं महिला प्रशासकों के मध्य मानसिक स्वास्थ्य की सार्थकता ज्ञात करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में प्रयुक्त मानसिक स्वास्थ्य मापनी, मानसिक स्वास्थ्य की दस विमाओं का मापन करती है। प्रतिदर्श में सम्मिलित 32 पुरुष प्रशासकों व 18 महिला प्रशासकों पर मानसिक स्वास्थ्य मापनी प्रशासित करके मानसिक स्वास्थ्य के दस विमाओं व कुल मानसिक स्वास्थ्य के लिए प्राप्तांक प्राप्त किये गये हैं। तत्पश्चात पुरुष एवं महिला प्रशासकों के मध्य मानसिक स्वास्थ्य के अन्तर की सार्थकता ज्ञात करने हेतु टी परीक्षण

**तालिका-2 : पुरुष एवं महिला प्रशासकों का मानसिक स्वास्थ्य की तुलना**

| विमा | पुरुष प्रशासक (N=32) | | महिला प्रशासक (N=18) | | D | $\sigma_D$ | t |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | M | SD | M | SD | | | |
| नियमित दिनचर्या RL | 20.66 | 2.44 | 18.4 | 4.27 | 2.15 | 1.09 | 1.96 असार्थक |
| समायोजन AD | 19.34 | 2.70 | 19.89 | 4.11 | 0.33 | 1.08 | -0.23 असार्थक |
| संवेगात्मक परिपक्वता EM | 19.84 | 3.94 | 20.33 | 3.54 | -.094 | 1.08 | 0.30 असार्थक |
| स्वमूल्यांकन SE | 21.06 | 3.35 | 21.22 | 3.35 | -0.16 | 0.98 | -0.45 असार्थक |
| स्वप्रत्यय SC | 20.53 | 3.29 | 18.94 | 4.35 | 1.58 | 1.18 | -0.16 असार्थक |
| शारीरिक स्वास्थ्य PH | 20.53 | 3.29 | 18.94 | 4.35 | 1.58 | 1.18 | 1.34 असार्थक |
| संतुष्टि SA | 20.78 | 2.66 | 21.28 | 2.94 | -0.49 | 0.83 | -0.59 असार्थक |
| जीवन का स्पष्ट सिद्धांत CP | 20.81 | 2.68 | 21.11 | 3.46 | -0.29 | 0.94 | -0.31 असार्थक |
| चिन्ता रहित AN | 20.38 | 2.73 | 20.78 | 3.17 | -0.40 | 0.89 | -0.45 असार्थक |
| अंतर्द्वन्द्व रहित CO | 20.5 | 3.02 | 20.72 | 3.57 | -0.22 | 0.99 | -0.22 असार्थक |
| कुल मानसिक स्वास्थ्यक | 204.1 | 13.11 | 202.4 | 24.63 | 1.73 | 6.25 | -0.27 असार्थक |

(df के लिए 0.05 स्तर पर तालिका मान 2.01)

का प्रयोग करके टी मानों की गणना की गयी। सार्थकता ज्ञात करने के लिए ज्ञात किये गये टी-अनुपात के लिए df का मान $n_1 + n_2 - 2$ पर .05 स्तर पर सारणीमान[4] देखी गयी। पुरुष एवं महिला प्रशासकों के लिए अन्तर की सार्थकता के लिए df का मान 32+18-2=48 है जिसके लिए .05 स्तर पर द्वि-पुच्छीय परीक्षण के लिए सारणीमान 2.01 है। संगणित टी.अनुपात का मान 2.01 या इससे अधिक होने पर सार्थक कहा गया है। गणना से प्राप्त परिणामों को सारणी-2 में प्रस्तुत किया गया है-

उपरोक्त सारणी-2 के अवलोकन के पश्चात् यह कह सकते हैं कि पुरुष एवं महिला प्रशासकों के मध्य मानसिक स्वास्थ्य की दसों विमाओं अर्थात् नियमित दिनचर्या, समायोजन, संवेगात्मक परिपक्वता, स्वमूल्यांकन, स्वप्रत्यय, शारीरिक स्वास्थ्य, संतुष्टि, जीवन का एक स्पष्ट सिद्धांत, चिन्ता रहित और अंतर्द्वन्दरहित पर तथा कुल मानसिक स्वास्थ्य पर अंतर .05 स्तर पर सार्थक नहीं है।

**खण्ड 2 - पुरुष एवं महिला प्रशासकों के व्यक्तित्व कारकों की तुलना**

प्रस्तुत खण्ड के आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करके पुरुष एवं महिला प्रशासकों के मध्य व्यक्तित्व कारकों की सार्थकता ज्ञात करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में प्रयुक्त 16 पी.एफ. के 'सी' फार्म जो आर.बी. कैटल के द्वारा बनायी गयी तथा एस.डी. कपूर व वी.के.डी. त्रिपाठी के द्वारा हिंदी अनुशीलन किया गया है, व्यक्तित्व कारकों के सोलह द्वि-ध्रुवीय कारकों का मापन करती है, का प्रयोग किया गया :

1. कारक ए : एकाकी/उत्साही
2. कारक बी : कमबुद्धिमान/अधिक बुद्धिमान,
3. कारक सी : संवेगात्मक/स्थिर
4. कारक ई : नम्र/दृढ़
5. कारक एफ : सौम्य/हँसमुख
6. कारक जी : सांसारिक/आध्यात्मिक
7. कारक एच : संकोची/सामाजिक
8. कारक आई : निष्ठुर/संवेदनशील

9. कारक एल : विश्वस्त/शंकालू
10. कारक एम : यथार्थवादी/कल्पनावादी
11. कारक एन : सामान्य/व्यवहारकुशल
12. कारक ओ : आत्मविश्वासी/चिन्तित
13. कारक क्यू$_1$ : रूढ़िवादी/आधुनिक
14. कारक क्यू$_2$ : समूहनियंत्रित/स्वआधारित
15. कारक क्यू$_3$ : अंतर्द्वन्दी/नियंत्रित तथा
16. कारक क्यू$_4$ : तनावमुक्त/तनावयुक्त

प्रतिदर्श में सम्मिलित 32 पुरुष एवं 18 महिला प्रशासकों पर 16 पी.एफ. प्रशासित करके व्यक्तित्व के सोलह द्वि-ध्रुवीय कारकों के लिए प्राप्तांक प्राप्त किये गये, तत्पश्चात पुरुष एवं महिला प्रशासकों के मध्य व्यक्तित्वकारकों के अंतर की सार्थकता ज्ञात करने हेतु टी-परीक्षण का प्रयोग करके टी-मानों की गणना की गयी है। सार्थकता ज्ञात करने के लिए ज्ञात किये गये 'टी-अनुपात' के लिए df का मान $n_1+n_2-2$ पर .05 स्तर पर सारणी मान देखी गयी। पुरुष एवं महिला प्रशासकों के लिए df का मान 32+18-2=48 है जिसके लिए .05 स्तर पर द्वि-पुच्छीय परीक्षण के लिए सारणी मान 2.01 है। संगणित टी-अनुपात का मान 2.01 या इससे अधिक होने पर सार्थक कहा गया है। गणना से प्राप्त परिणामों को तालिका-3 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका-3 का सांख्यिकीय विश्लेषण 16 पी.एफ. के प्रश्नावली के सभी सोलह द्वि-ध्रुवीय कारकों के लिए किया गया। किये गये सांख्यिकीय विश्लेषण से स्पष्ट है कि-पुरुष तथा महिला प्रशासकों के व्यक्तित्व कारकों के सभी सोलह द्वि-ध्रुवीय कारक ए - एकाकी/उत्साही, कारक जी - कम बुद्धिमान/अधिक बुद्धिमान, कारक सी - संवेगात्मक/स्थिर, कारक ई - नम्र/दृढ़, कारक एफ - सौम्य/हँसमुख, कारक जी - सांसारिक/आध्यात्मक, कारक एच - संकोची/सामाजिक, कारक आई - निष्ठुर/संवेदनशील, कारक एल - विश्वस्त/शंकालू, कारक एम - यथार्थवादी/कल्पनावादी, कारक एन - सामान्य/व्यवहार, कारक ओ - आत्मविश्वासी/चिन्तित, कारक क्यू$_1$ - रूढ़िवादी/आधुनिक, कारक क्यू$_2$ -समूह नियंत्रित/स्वआधारित, कारक

**तालिका-3 : पुरुष एवं महिला प्रशासकों के व्यक्तित्व कारकों की तुलना**

| कारक | पुरुष प्रधानाचार्य (N=117) | | महिला प्रधानाचार्य (N=112) | | D | $\sigma_D$ | t |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | M | SD | M | SD | | | |
| ए : एकाकी उत्साही | 7.12 | 2.29 | 8.27 | 2.19 | -1.15 | 0.65 | -1.75 असार्थक |
| बी : कमबुद्धिमान/अधिक बुद्धिमान | 4.28 | 1.52 | 4.11 | 1.41 | 0.17 | 0.42 | 0.39 असार्थक |
| सी : संवेगात्मक/स्थिर | 7.5 | 2.25 | 6.88 | 1.77 | 0.61 | 0.57 | 1.05 असार्थक |
| ई : नम्र/दृढ़ | 7.03 | 2.40 | 6.16 | 3.13 | 0.86 | 0.85 | 1.01 असार्थक |
| एफ : सौम्य/हँसमुख | 6.78 | 2.13 | 6.44 | 2.40 | 0.33 | 0.68 | 0.49 असार्थक |
| जी : सांसारिक/आध्यात्मिक | 8 | 2.38 | 8.94 | 2.38 | -0.94 | 0.70 | -1.34 असार्थक |
| एच : संकोची/सामाजिक | 7.68 | 2.30 | 7.11 | 2.24 | 0.57 | 0.66 | 0.86 असार्थक |
| आई : निष्ठुर/संवेदनशील | 5.87 | 2.33 | 6.72 | 2.13 | -0.84 | 0.65 | -1.3 असार्थक |
| एल : विश्वस्त/शंकालू | 6.12 | 2.21 | 6.55 | 1.65 | -0.43 | 0.55 | -0.78 असार्थक |
| एम : यथार्थवादी/कल्पनावादी | 6.84 | 6.64 | 7.55 | 2.85 | -0.71 | 0.81 | -0.86 असार्थक |
| एन : सामान्य/व्यवहार कुशल | 5.84 | 1.76 | 5.94 | 2.07 | -0.10 | 0.57 | -0.17 असार्थक |
| ओ : आत्मविश्वासी/चिन्तित | 5.75 | 2.46 | 6 | 2.52 | -0.25 | 0.73 | -0.33 असार्थक |
| क्यू$_1$ : रूढ़िवादी/आधुनिक | 7.56 | 1.98 | 7.72 | 1.87 | -0.16 | 0.56 | -0.22 असार्थक |
| क्यू$_2$ : समूहनियंत्रित/स्वआधारित | 4.81 | 2.00 | 4.61 | 2.14 | 0.20 | 0.61 | 0.32 असार्थक |
| क्यू$_3$ : अन्तर्द्वन्दी/नियंत्रित | 7.43 | 2.46 | 7.33 | 2.61 | 0.10 | 0.75 | 0.13 असार्थक |
| क्यू$_4$ : तनावमुक्त/तनावयुक्त | 6.09 | 2.1 | 6.38 | 2.14 | -0.29 | 0.62 | -0.47 असार्थक |

(df के लिए 0.05 स्तर पर सारणी मान 2.01)

क्यू$_3$ – अन्तर्द्वन्दी/नियंत्रित एवं कारक क्यू$_4$ – तनावमुक्त/तनावयुक्त पर अवलोकित अंतर 0.05 सार्थक नहीं है।

## खण्ड 3 – पुरुष प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य का व्यक्तित्व कारकों की सहसंबंध

प्रस्तुत खण्ड के आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करके पुरुष प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य का संबंध उनके व्यक्तित्व कारकों से ज्ञात करने का प्रयास किया गया है। इस खण्ड में मानसिक स्वास्थ्य को आश्रित चर के रूप में तथा व्यक्तित्व गुणों को स्वतंत्र चरों के रूप में लिया गया है। यहां पर पुरुष प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य तथा व्यक्तित्व कारकों के लिए संगणित सहसंबंध गुणांकों की व्याख्या इस मान्यता के आधार पर ही की गयी है।

प्रतिदर्श में सम्मिलित 32 पुरुष प्रशासकों पर मानसिक स्वास्थ्य मापनी तथा 16 पी.एफ. प्रश्नावली प्रशासित करके मानसिक स्वास्थ्य तथा 16 व्यक्तित्व कारकों के लिए प्राप्तांक प्राप्त किये गये। तत्पश्चात् पुरुष प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य तथा 16 व्यक्तित्व गुणों के मध्य सहसंबंध ज्ञात करने हेतु पियरसन की गुणनफल आघूर्ण विधि का प्रयोग करके सहसंबंध गुणांक का मान सारणी[5] की सहायता से 0.05 स्तर पर देखी गयी है। सहसंबंध गुणांक की तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि 32 पुरुष प्रशासकों की संख्या के लिए .05 स्तर पर .349 है। संगणित सहसंबंध गुणांकों का मान .349 या इससे अधिक होने पर सार्थक कहा गया है। गणना से प्राप्त सहसंबंध गुणांकों को तालिका–4 में प्रस्तुत किया गया है।

पुरुष प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य का व्यक्तित्व कारकों के सोहल द्वि–ध्रुवीय करकों में से कारक एल – विश्वस्त/शंकालू एवं कारक क्यू4 – तनावयुक्त/तनावमुक्त .05 स्तर पर ऋणात्मक रूप से सहसंबंधित है। अर्थात इनके बढ़ने से मानचित्र स्वास्थ्य कम होता है तथा इसके घटते ही मानसिक स्वास्थ्य बढ़ता है। इसके अतिरिक्त शेष सभी चौदह करकों के कारक ए – एकाकी/उत्साही, कारक बी – कम बुद्धिमान/अधिक बुद्धिमान, कारक सी – संवेगात्मक/स्थिर, कारक ई – नम्र/दृढ़, कारक एफ – सौम्य/हँसमुख, कारक जी – सांसारिक/आध्यात्मक, कारक एच – संकोची/सामाजिक, कारक आई – निष्ठुर/संवेदनशील, कारक एम – यथार्थवादी/कल्पनावादी, कारक एन

**तालिका-4**

**पुरुष प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य का व्यक्तित्व कारकों से सहसंबंध**

| क्र.सं. | व्यक्तित्व कारक | r | सार्थकता स्तर |
|---|---|---|---|
| 1. | कारक ए : एकाकी/उत्साही | .204 | असार्थक |
| 2. | कारक बी : कमबुद्धिमान/अधिक बुद्धिमान, | .170 | असार्थक |
| 3. | कारक सी : संवेगात्मक/स्थिर | -2.19 | असार्थक |
| 4. | कारक ई : नम्र/दृढ़ | .227 | असार्थक |
| 5. | कारक एफ : सौम्य/हँसमुख | -.010 | असार्थक |
| 6. | कारक जी : सांसारिक/आध्यात्मिक | .162 | असार्थक |
| 7. | कारक एच : संकोची/सामाजिक | .099 | असार्थक |
| 8. | कारक आई : निष्ठुर/संवेदनशील | .106 | असार्थक |
| 9. | कारक एल : विश्वस्त/शंकालू | -.500 | असार्थक |
| 10. | कारक एम : यथार्थवादी/कल्पनावादी | .243 | असार्थक |
| 11. | कारक एन : सामान्य/व्यवहारकुशल | .039 | असार्थक |
| 12. | कारक ओ : आत्मविश्वासी/चिन्तित | -.060 | असार्थक |
| 13. | कारक क्यू$_1$ : रूढ़िवादी/आधुनिक | -.160 | असार्थक |
| 14. | कारक क्यू$_2$ : समूहनियंत्रित/स्वआधारित | -.180 | असार्थक |
| 15. | कारक क्यू$_3$ : अंतर्द्वन्दी/नियंत्रित तथा | -.120 | असार्थक |
| 16. | कारक क्यू$_4$ : तनावमुक्त/तनावयुक्त | -.650 | सार्थक |

(.05 स्तर पर सहसंबंध का सारणी मान 0.349 है)

- सामान्य/व्यवहार, कारक ओ - आत्मविश्वासी/चिन्तित, कारक क्यू$_1$ - रूढ़िवादी/आधुनिक, कारक क्यू$_2$ -समूह नियंत्रित/स्वआधारित एवं कारक क्यू$_3$ - अन्तर्द्वन्दी/नियंत्रित पर अवलोकित अंतर 0.05 सार्थक नहीं है। अर्थात् इन सभी कारकों का पुरुष प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव नहीं पड़ता है।

## खण्ड 4 - महिला प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य का व्यक्तित्व कारकों से सहसंबंध

प्रस्तुत खण्ड के आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करके महिला प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य का संबंध उनके व्यक्तित्व कारकों से ज्ञात करने का प्रयास किया गया है। इस खण्ड में मानसिक स्वास्थ्य को आश्रित चर के रूप में तथा व्यक्तित्व गुणों को स्वतंत्र चरों के रूप में लिया गया है। यहां पर महिला प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य तथा

**तालिका-5**

**पुरुष प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य का व्यक्तित्व कारकों से सहसंबंध**

| क्र.सं. | व्यक्तित्व कारक | r | सार्थकता स्तर |
|---|---|---|---|
| 1. | कारक ए : एकाकी/उत्साही | .517 | सार्थक |
| 2. | कारक बी : कमबुद्धिमान/अधिक बुद्धिमान, | .074 | असार्थक |
| 3. | कारक सी : संवेगात्मक/स्थिर | .24 | असार्थक |
| 4. | कारक ई : नम्र/दृढ़ | .104 | असार्थक |
| 5. | कारक एफ : सौम्य/हँसमुख | .44 | सार्थक |
| 6. | कारक जी : सांसारिक/आध्यात्मिक | .107 | असार्थक |
| 7. | कारक एच : संकोची/सामाजिक | .21 | असार्थक |
| 8. | कारक आई : निष्ठुर/संवेदनशील | .07 | असार्थक |
| 9. | कारक एल : विश्वस्त/शंकालू | .172 | असार्थक |
| 10. | कारक एम : यथार्थवादी/कल्पनावादी | .525 | सार्थक |
| 11. | कारक एन : सामान्य/व्यवहारकुशल | -.21 | असार्थक |
| 12. | कारक ओ : आत्मविश्वासी/चिन्तित | .22 | सार्थक |
| 13. | कारक क्यू$_1$ : रूढ़िवादी/आधुनिक | .024 | असार्थक |
| 14. | कारक क्यू$_2$ : समूहनियंत्रित/स्वआधारित | .069 | असार्थक |
| 15. | कारक क्यू$_3$ : अंतर्द्वन्दी/नियंत्रित तथा | .348 | असार्थक |
| 16. | कारक क्यू$_4$ : तनावमुक्त/तनावयुक्त | -.23 | सार्थक |

(.05 स्तर पर सहसंबंध का सारणी मान 0.444 है)

व्यक्तित्व कारकों के लिए संगणित सहसंबंध गुणांकों की व्याख्या इस मान्यता के आधार पर ही की गयी है।

प्रतिदर्श में सम्मिलित 18 महिला प्रशासकों पर मानसिक स्वास्थ्य मापनी तथा 16 पी.एफ. प्रश्नावली प्रशासित करके मानसिक स्वास्थ्य तथा 16 व्यक्तित्व कारकों के लिए प्राप्तांक प्राप्त किये गये। तत्पश्चात् महिला प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य तथा 16 व्यक्तित्व गुणों के मध्य सहसंबंध ज्ञात करने हेतु पियरसन की गुणनफल आघूर्ण विधि का प्रयोग करके सहसंबंध गुणांक का मान सारणी[6] की सहायता से .05 स्तर पर देखी गयी है। सहसंबंध गुणांक की सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि 18 महिला प्रशासकों की संख्या के लिए .05 स्तर पर .444 है। संगणित सहसंबंध गुणांकों का मान .444 या इससे अधिक होने पर सार्थक कहा गया है। गणना से प्राप्त सहसंबंध गुणांकों को तालिका–5 में प्रस्तुत किया गया है।

उपरोक्त सारणी के सांख्यिकीय विश्लेषण से स्पष्ट है कि – महिला प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य का व्यक्तित्व कारकों के सोहल द्वि–ध्रुवीय करकों में से कारक ए – एकाकी/उत्साही एवं कारक एम – यथार्थवादी/कल्पनावादी से .05 स्तर पर धनात्मक रूप से सहसंबंधित है। अर्थात इनके बढ़ने से महिला प्रशासकों का मानसिक स्वास्थ्य भी अधिक होता है। तथा इनके कम होने से महिला प्रशासकों का मानसिक स्वास्थ्य भी कम होता है। इसके अतिरिक्त शेष सभी चौदह करकों के कारक बी – कम बुद्धिमान/ अधिक बुद्धिमान, कारक सी – संवेगात्मक/स्थिर, कारक ई – नम्र/दृढ़, कारक एफ – सौम्य/हँसमुख, कारक जी – सांसारिक/आध्यात्मक, कारक एच – संकोची/सामाजिक, कारक आई – निष्ठुर/संवेदनशील, कारक एल – विश्वस्त/शंकालू, कारक एन – सामान्य/व्यवहार कुशल, कारक ओ – आत्मविश्वासी/चिन्तित, कारक क्यू$_1$ – रूढ़िवादी/आधुनिक, कारक क्यू$_2$ –समूह नियंत्रित/स्वआधारित, कारक क्यू$_3$ – अन्तर्द्वन्दी/नियंत्रित एवं कारक क्यू4 – तनावयुक्त/तनावमुक्त महिला प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य से .05 स्तर सार्थक रूप से संबंधित नहीं है अर्थात् इन सभी चौदह कारकों से महिला प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव नहीं पड़ता है।

## निष्कर्ष

पुरुष एवं महिला प्रशासकों में नियमित दिनचर्या, समायोजन, संवेगात्मक परिपक्वता,

स्वमूल्यांकन, स्वप्रत्यय, शारीरिक स्वास्थ्य, संतुष्टि, जीवन का एक स्पष्ट सिद्धांत, चिन्तारहित व अन्तर्द्वन्दरहित एक समान है। इसके अतिरिक्त पुरुष एवं महिला प्रशासकों का कुल मानसिक स्वास्थ्य एक समान है।

पुरुष एवं महिला प्रशासकों में व्यक्तित्व कारक ए – एकाकी/ उत्साही, कारक बी – कम बुद्धिमान/अधिक बुद्धिमान, कारक सी – संवेगात्मक/स्थिर, कारक ई – नम्र/दृढ़, कारक एफ – सौम्य/हँसमुख, कारक जी – सांसारिक/आध्यात्मक, कारक एच – संकोची/सामाजिक, कारक आई – निष्ठुर/संवेदनशील, कारक एल – विश्वस्त/शंकालू, कारक एम – यथार्थवादी/कल्पनावादी, कारक एन – सामान्य/व्यवहार कुशल, कारक ओ – आत्मविश्वासी/चिन्तित, कारक क्यू$_1$ – रूढ़िवादी/आधुनिक, कारक क्यू$_2$ – समूह नियंत्रित/स्वआधारित, कारक क्यू$_3$ – अन्तर्द्वन्दी/नियंत्रित एवं एवं कारक क्यू4 – तनावयुक्त/तनावमुक्त एक समान है।

पुरुष प्रशासकों के व्यक्तित्व के चौदह कारक : ए – एकाकी/उत्साही, कारक बी – कम बुद्धिमान/अधिक बुद्धिमान, कारक सी – संवेगात्मक/स्थिर, कारक ई – नम्र/दृढ़, कारक एफ – सौम्य/हँसमुख, कारक जी – सांसारिक/आध्यात्मक, कारक एच – संकोची/सामाजिक, कारक आई – निष्ठुर/संवेदनशील, कारक एम – यथार्थवादी/कल्पनावादी, कारक एन – सामान्य/व्यवहार कुशल, कारक ओ – आत्मविश्वासी/चिन्तित, कारक क्यू$_1$ – रूढ़िवादी/आधुनिक, कारक क्यू$_2$ – समूह नियंत्रित/स्वआधारित, कारक क्यू$_3$ – अन्तर्द्वन्दी/नियंत्रित पुरुष प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित नहीं है। जबकि व्यक्तित्व के कारक एल – विश्वस्त/शंकालू एवं कारक क्यू4 – तनावयुक्त/तनावमुक्त एक समान है।

महिला प्रशासकों के व्यक्तित्व के चौदह कारक : ए – एकाकी/उत्साही, कारक बी – कम बुद्धिमान/अधिक बुद्धिमान, कारक सी – संवेगात्मक/स्थिर, कारक ई – नम्र/दृढ़, कारक जी – सांसारिक/आध्यात्मक, कारक एच – संकोची/सामाजिक, कारक आई – निष्ठुर/संवेदनशील, एल – विश्वस्त/शंकालू, कारक एन – सामान्य/ व्यवहार कुशल, कारक ओ – आत्मविश्वासी/चिन्तित, कारक क्यू$_1$ – रूढ़िवादी/आधुनिक, कारक क्यू$_2$ – समूह नियंत्रित/स्वआधारित, कारक क्यू$_3$ – अन्तर्द्वन्दी/नियंत्रित तथा कारक क्यू4 – तनावमुक्त/तनावयुक्त महिला प्रशासकों के मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित नहीं है।

व्यक्तित्व के कारक एफ - सौम्य/हँसमुख एवं कारक एम - यथार्थवादी/ कल्पनावादी महिला प्रशासकों से धनात्मक रूप से संबंधित है।

## संदर्भ

मोहन्ती, एस. (1992) : *''ऑकूपेशनल एंड मेंटल हेल्थ इन एग्जक्यूटिव्स, ए कम्परेटिव स्टडी ऑफ द पब्लिक एंड प्राइवेट सेक्टर''*, पीएच.डी. साइकॉलोजी, उत्कल यूनिवर्सिटी भुवनेश्वर, नई दिल्ली, एन.सी.ई.आर.टी. फिफ्थ सर्वे ऑफ एजूकेशनल रिसर्च वॉल्यूम द्वितीय, 1988-92, पेज 969

महापात्रा, सी. ((1992) : *''जॉब स्ट्रेस मेंटल हेल्थ एंड कोपिंग ए स्टडी ऑफ प्रोफेशनल्स एम.फिल. साइकोलॉजी,''* उत्कल यूनिवर्सिटी भुवनेश्वर, नई दिल्ली, एन.सी.ई. आर.टी. फिफ्थ सर्वे ऑफ एजूकेशनल रिसर्च वॉल्यूम द्वितीय, 1988-92, पेज 969

कैटल, आर.बी. (1982) : *''मैनुअल फार द 16 पी.एफ''*, नई दिल्ली, द साइको सेंटर, पेज, 17-22

गुप्ता, एस.पी. (2002) : *सांख्यिकीय विधियां,* इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन, पेज 599

गुप्ता एस.पी., (2002) : *सांख्यिकीय विधियां,* इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन, पेज 600

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 15, अंक 2, अगस्त 2008

*शोध टिप्पणी/संवाद*

# जनसंख्या शिक्षा का शिक्षक-शिक्षा पाठ्यक्रम से समन्वय

**श्रुति आनन्द***

हमारे समाज में तीव्र गति से बदलाव हो रहा है, इसका मुख्य कारण एक प्रकार से गति से नाच रही जनसंख्या है। तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या आज भारत ही नहीं अपितु लगभग सभी विकासशील देशों की ज्वलंत समस्या है। विकसित देश भी इससे अछूते नहीं है। किसी देश की जनसंख्या का उसके विकास स्तर से परस्पर घनिष्ठ संबंध होता है जनसंख्या और सीमित साधनों में समन्वय स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि जनसंख्या पर नियंत्रण किया जाय।

भारत की जनगणना 2001 के संदर्भ समय बिन्दु 1 मार्च 2001 को 00.00 बजे भारत की जनसंख्या 1027015247 हो गयी थी। इस प्रकार चीन के पश्चात भारत विश्व का दूसरा देश है जो 100 करोड़ जनसंख्या का स्तर अधिकारिक रूप से पार कर गया है। निश्चय ही मानव जीवन के इतिहास में इन दोनों देशों की विशाल जनसंख्या लोगों के जीवन व भविष्य को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगी। इन दोनों देशों की जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग 38 प्रतिशत है। (भारत में) विश्व के कुल भू-क्षेत्र का मात्र 2.4 प्रतिशत हिस्सा है, जबकि यहां विश्व की कुल जनसंख्या का 16.87 प्रतिशत भाग निवास करता है। जनसंख्या की लैंगिक संरचना (भारत) में विगत 100 वर्षों में लिंगानुपात में 39 अंकों की गिरावट हुई है जो 1901 के 972 के स्तर से कम होकर 2001 में 933 पर आ गया है। ज्ञातव्य है कि भारत का यह लिंगानुपात न केवल विश्व के औसत लिंगानुपात 986 से कम है बल्कि विश्व के सर्वाधिक जनसंख्या वाले शीर्षस्थ 10 देशों में भी सबसे कम है।

---

* प्रवक्ता, आई.एस.डी. कालेज इलाहाबाद

भारत में साक्षरों की संख्या की दृष्टि से 2001 की जनगणना के आकड़े अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है, 1991–2001 के दशक में न केवल देश में साक्षरों की कुल संख्या में अब तक की सर्वाधिक वृद्धि हुई है, बल्कि उससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि स्वतंत्रता के पश्चात, पहली बार इस दशक (1991–2001) में निरक्षरों की कुल संख्या में कमी आई है। इस दशक को ''साक्षरता दशक'' की संज्ञा दी जा सकती है।

आज जनसंख्या का बढ़ना सुसाइडल है, आत्मघाती है। आज कोई समझदार मुल्क अपनी संख्या नहीं बढ़ा रहा है। संख्या न बढ़ाने की समझदारी के बहुत कारण है। पहला कारण तो यह है कि अगर जीवन में सुख चाहिए, अधिकतम सुख, समृद्धि चाहिए, तो न्यूनतमक लोग चाहिए। अगर दीनता, अज्ञानता, अशिक्षा, दुख चाहिए, गरीबी चाहिए, बीमारी चाहिए, पागलपन चाहिए तो अधिकतम लोग पैदा करना उचित है।

जनसंख्या शिक्षा एक शैक्षिक कार्यक्रम है, जिसके द्वारा परिवार देश, राष्ट्र तथा विश्व की जनसंख्या स्थिति का बोध कराया जाता है जिससे विद्यार्थियों में इस स्थिति के प्रति तर्कपूर्ण दृष्टिकोण तथा उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार की भावना विकसित की जा सके। जनसंख्या शिक्षा इस बात के लिए जागरूक बनाती है कि जनसंख्या परिवर्तन की प्रक्रिया तथा उसके परिणाम विकास को प्रभावित करते है और इस प्रकार विकास में प्रत्येक व्यक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जनसंख्या विस्फोट से हमारी सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियां प्रभावित होती है। असीमित जनसंख्या वृद्धि मानव जीवन स्तर को प्रभावित कर रही है। जिससे मनुष्य का जीवन तो तनावपूर्ण हो ही रहा है इसके अस्तित्व तक के लोप होने का भय है।

प्रोफेसर गेल–नेस्स का कथन है– ''जनसंख्या नीति का प्रत्येक देश द्वारा व्यावहारिक रूप से अपनाया जाना फलस्वरूप प्रजनन क्षमता का दुनियाभर में कम होने लगना– इतिहास की एक मौन क्रांति है जो बहुत अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होने जा रही है।''

अगर मुझसे कोई पूछे कि दुनिया की मौजूद समस्याओं का सबब क्या है? तो मेरा जवाब दो शब्दों का होगा ''जनसंख्या विस्फोट''। दरअसल इस सच्चाई से मुंह नहीं मोड़ा जा सकता कि सुरसा के मुख की तरह बढ़ती जा रही आबादी ने मानवीय विकास को निगलना शुरु कर दिया है और विनाश को उगलना। जनसंख्या–विस्फोट इस सदी की सर्वाधिक त्रासदीपूर्ण घटना है।

जनसंख्या विस्फोट की समस्या का सर्वाधिक चिन्तनीय पक्ष है, तीसरी दुनिया के विकासशील देशों की दुर्दशा। आकड़े गवाह है कि आबादी को असाध्य महारोग बनाने में

तीसरी दुनिया की दुर्भाग्यशाली भूमिका रही है, अपनी दुर्दशा के लिए वह स्वयं उत्तरदायी है, विशेषकर भारत ने जनसंख्या विस्फोट के लिए जो 'बारूद' तैयार किया है वह अपने आप में अभूतपूर्व है।

काहिरा (1994) जनसंख्या तथा विकास की अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में अपनाये गये प्रोग्राम ऑफ एक्शन में यह परिभाषा दी गयी- ''प्रजनन स्वास्थ्य वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति प्रजनन तंत्र के संदर्भ में न केवल किसी भी रोग से मुक्त हो बल्कि वह शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक सभी अर्थों में स्वस्थ हो'' उपयुक्त प्रलेख (दस्तावेज) में प्रजनन स्वास्थ्य देखभाल (परिचर्या) के बारे में कहा गया है कि इसमें वे सभी विधियां तथा सेवाएं सम्मिलित हैं जो प्रजनन स्वास्थ्य में अपना योगदान देती हैं। इनमें यौन स्वास्थ्य भी शामिल है जिसका उद्देश्य न केवल प्रजनन तथा यौन संक्रमित रोगों से संबंधित सलाह तथा देखभाल है, बल्कि जीवन-गुणवत्ता तथा व्यक्तिक संबंधों में वृद्धि है। इसलिए प्रजनन स्वास्थ्य का अभिप्राय है कि व्यक्ति न केवल प्रजनन-समर्थ हो बल्कि वह प्रजनन संबंधित उचित निर्णय लेने में भी समर्थ तथा स्वतंत्र हो।

किशोरावस्था शिक्षा की सामान्य रूपरेखा का विकास जनसंख्या एवं विकास पर अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी 1994 के साथ-साथ हुआ। उसमें प्रोग्राम ऑफ एक्शन के सुझावों पर ध्यान दिया गया। साथ ही साथ महिलाओं पर चौथी अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी (1995), बिजिंग में दिए गये सुझावों पर भी ध्यान दिया गया। दोनों ही दस्तावेजों में किशोरों के यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य का ज्ञान तथा सेवाओं के अधिकार को सुरक्षित तथा प्रोत्साहित करने का संकल्प लिया गया।''

कैशोर्य शिक्षा के अवधारणात्मक स्वरूप का सरोकार (संबंध) कैशोर्यों के प्रजनन एवं यौन स्वास्थ्य से है, जिसके निम्नलिखित तीन बिन्दु हैं–

1. किशोरावस्था
2. एच.आई.वी./एड्स
3. मादक पदार्थों का सेवन

उपरोक्त तीनों संघटकों की विषय-वस्तु मानव व्यवहार से संबंधित है। इसलिए यह विषय सामाजिक और सांस्कृतिक रूप में बहुत ही संवेदनशील है।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (2000) ने सामाजिक-डेमोग्राफी लक्ष्य 2010 निर्धारित किया है जिससे जनसंख्या स्थिरीकरण किया जाय लेकिन इस दिशा में प्रगति उतनी नहीं

है जितनी अधिकतम होनी चाहिए। जनसंख्या नीति संबंधी समस्याओं को अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में स्थान देकर महत्वपूर्ण भूमिका निभायी जा सकती है।

समाज में आये परिवर्तनों और आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (1998) Curriculam Framework for Quality Teacher Education नई दिल्ली में अध्यापक शिक्षा के उद्देश्य पुनः निर्धारित किये जिसमें उभरते मुद्दों में वातावरण, जनसंख्या, लिंग समानता, कानूनी जानकारी के प्रति संवेदनशील बनना, एवं पारिस्थितिकी पर भी ध्यान रखा है। प्रत्येक स्तर पर (प्रारंभिक, माध्यमिक) अध्यापक शिक्षा में वैकल्पिक विषय पर स्थान दिया है। भारतीय संविधान में प्रतिस्थापित राष्ट्रीय लक्ष्यों एवं मूल्यों की आत्मसात करने की क्षमता के विकास की बात रखी है। लेकिन इन मूल्यों का निर्धारण जनसंख्या वृद्धि के चलते नहीं किया जा सकता है। सामाजिक वास्तविकताओं के प्रति समालोचनात्मक जागरूकता विकसित करना एवं प्रबंधकीय तथा संगठनात्मक कौशलता के विकास की बात भी रखी है।

राष्ट्रीय विद्यालयी शिक्षा पाठ्यक्रम फ्रेमवर्क (2005), के द्वारा बहुआयामी उपागम के अंतर्गत विभिन्न विषयों में समन्वय भी रखी है। जनसंख्या संबंधी उभरते समस्याओं को विभिन्न विषयों के साथ विशेषकर शिक्षक शिक्षा के सम्मिलित किया जा सकता है, लेकिन सिर्फ सैद्धांतिक न होकर व्यावहारिक एवं नवाचार पर आधारित होनी चाहिए।

Draft Curriculum framework for the Education of Teacher Education (M.Ed.) दो वर्षों के लिए (4 सिमेस्टर) के लिए सुझाव मांगा गया है। जिसमें जनसंख्या शिक्षा पाठ्यक्रम को भी (Specialization) विशिष्टीकरण के रूप में स्थान दिया गया है। Adolescence Education को भी इसी समूह में रखा गया है।

किशोरावस्था शिक्षा जनसंख्या शिक्षा का अभिन्न अंग बन गया है। जनसंख्या शिक्षा की पाठ्यवस्तु का समन्वय गुणवत्ता की दृष्टिकोण से किशोरावस्था शिक्षा में किया जा सकता है इससे शिक्षक-शिक्षा पाठ्यक्रम के अन्तर्गत शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा का समाजशास्त्र एवं शैक्षिक तकनीकी के अनुप्रयोग, कौशलों के रूप में इकाई विषय वस्तु के रूप में रखा जा सकता है।

आज शिक्षक-शिक्षा पाठ्यक्रम बनाने वालों के समक्ष यह अपने आप में बड़ी चुनौती है कि पाठ्यक्रम में समग्रता को कैसे लाया जाय और छात्रों में इस कारण भय तथा दबाव का भी वातावरण न बने। शैक्षिक जगत के सामने आज जनसंख्या शिक्षा की वस्तुस्थिति तथा विषय वस्तु को लेकर अनेक समस्याएं हैं भारत की शिक्षा व्यवस्था में विषय-वस्तु

को लेकर अनेक समस्याएं हैं भारत की शिक्षा व्यवस्था में विषय-वस्तु तथा अध्ययन-अध्यापन प्रणाली एवं प्रक्रिया को लेकर पिछले छः वर्षों में वृहद् चर्चाएं हुई हैं। जनसंख्या शिक्षा कार्यक्रम को असली जामा पहनाने में सामाजिक समरसता तथा धार्मिक सहिष्णुता की स्थापना करना शिक्षा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण उद्देश्य है क्योंकि भारतीय समाज एक धार्मिक एवं पंथनिरपेक्ष राष्ट्र है।

जनसंख्या शिक्षा का शैक्षिक-शिक्षा पाठ्यक्रम से समन्वय हेतु विद्यालयी पाठ्यक्रम में स्थान रखा गया है, लेकिन विद्यालयी शिक्षा में अलग विषय के रूप में इसका स्थान नगण्य है। जबकि शिक्षक प्रशिक्षण में (बी.एड., एम.एड.) इसे वैकल्पिक विषय के रूप में स्थान दिया गया है, इसे मुख्य विषय के स्वरूप में समन्वय स्थापित करना होगा। साथ ही प्रौढ़ शिक्षा, सतत् शिक्षा, सारक्षरता, महिला विकास जैसे अनौपचारिक शिक्षा के रूप में शिक्षक पाठ्यक्रम में स्थान देना होगा। इसके लिए सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग तो किया जाता है लेकिन इसमें प्रशिक्षित व्यक्तियों की कमी है। ऐसे व्यक्तियों के लिए व्यक्तित्व प्रभावशाली होना चाहिए। माध्यमिक स्तर पर विद्यालयों में जनसंख्या प्रकोष्ठ की स्थापना की जानी चाहिए तथा समय-समय पर सेमिनार, कान्फ्रेंस, कार्यशाला आयोजित की जानी चाहिए।

प्रशिक्षण के अंतर्गत पाठ्य योजना निर्माण में अतिरिक्त पाँच पाठ्य योजनाएं जनसंख्या पर निर्मित होनी चाहिए। साथ ही शिक्षण कौशल पर इस पर कार्य होने चाहिए। पाठ्य योजना का निर्माण यथार्थवाद पर होना चाहिए एवं स्थानीय परिस्थितियों पर विशेष ध्यान देना चाहिए एवं शिक्षण नीतियां स्पष्ट होनी चाहिए। इसके लिए कई प्रशिक्षण पर कार्य करना होगा। पाठ्यक्रम का आधार सामाजिक मनोवैज्ञानिक एवं विशिष्ट प्रवृत्तियों पर आधारित होना चाहिए एवं समय-समय पर जनसंख्या शिक्षा परियोजना के अंतर्गत विकसित साहित्य की समीक्षा भी की जानी चाहिए। इस प्रकार शिक्षक शिक्षा में बहुआयामी विषय प्रकृति के रूप में जनसंख्या शिक्षा का प्रशिक्षण देना होगा। इसे भारतीय लोग नया विषय मानते हैं। नौजवानों हेतु इसका अध्ययन विशेषरूप से आवश्यक है। जनसंख्या शिक्षा पाठ्यक्रम में Value-laden पर विशेष ध्यान देना होगा।

शिक्षक प्रशिक्षण विभाग में अनुसंधान के रूप में एम.फिल. और पी-एच. डी स्तर पर विशेष रूप से यौन शिक्षा, सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि, परिवार नियोजन, ड्रग एडिक्ट्स, जन्म-दर, मृत्यु-दर पर अनुसंधान हो रहे है। इस स्तर पर जनसंख्या शिक्षा विभाग आन्ध्रा (तिरूपति) में इस दिशा में विशेष प्रगति हुई है, लेकिन विश्वविद्यालय के शिक्षा-शिक्षक विभाग में जनसंख्या शिक्षा पर विशेष कार्य होने चाहिए।

**सुझाव**

1. जनसंख्या शिक्षा संबंधित पाठ्यक्रम के शिक्षक-शिक्षा पाठ्यक्रम के मुख्य प्रश्नपत्रों के पाठ्यक्रम (सिलेबस) में स्थान दिये जाय।
2. किशोरावस्था में कौशल विकास संबंधी प्रशिक्षण माड्यूल का प्रयोग छात्राध्यापकों द्वारा कराया जाय।
3. पाठ्य-योजना निर्माण में अतिरिक्त पांच पाठ्य-योजनायें जनसंख्या संबंधित समस्याओं पर बनायी जाय।
4. माध्यमिक स्तर पर विद्यालयों में जनसंख्या प्रकोष्ठ की स्थापना अनिवार्य कर दी जाय।
5. सेमिनार, कांफ्रेंस, कार्यशाला, शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों में समय-समय पर करायी जानी चाहिए।
6. जनसंख्या शिक्षा, किशोरावस्था शिक्षा संबंधित साहित्य की समीक्षा, राष्ट्रीय स्तर पर कराकर ही उपलब्ध करायी जाय।
7. सूक्ष्म शिक्षण कौशल द्वारा अभ्यास (जनसंख्या शिक्षा संबंधित) छात्राध्यापकों को कराया जाय।

**संदर्भ**

एन.सी.ई.आर.टी. (1972) पापुलेशन एजूकेशन
एम.एल. वानगो (2005) पापुलेशन एजूकेशन - टण्डन पब्लिकेशन लुधियाना
योजना (वाल्यूम.44, नं. 8, अगस्त 2004)
एन.सी.ई.आर.टी. इलाहाबाद (2005) किशोरावस्था में कौशल विकास
एन.सी.टी.ई. (2005) प्रोपोज्ड ड्राफ्ट क्यूरिकुलम फ्रेमवर्क आन टीचर एजूकेशन
राज्य शिक्षा संस्थान इलाहाबाद - जनसंख्या शिक्षा दिग्दर्शिका-पृष्ठ 39
प्रशांत कुमार घोष (2004) जनगणना एवं जनसंख्या - शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद
एन.सी.ई.आर.टी. - (2005) राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा
आर.सी. चान्दना (2006) जनसंख्या भूगोल - कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना
एपियर जरनल आफ एजुकेशन (2002) इलाहाबाद वाल्यूम-2, नं. 1, पृ. 33-36
बी.के. साहू (1989) पापुलेशन एजुकेशन - स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा.लि. नई दिल्ली
रवीन्द्र अग्निहोत्री (2006) आधुनिक भारतीय शिक्षा : समस्याएं और समाधान - राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
एस.के. कोचर (2004) मेथड एंड टेक्नीक आफ टीचिंग, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा.लि. नई दिल्ली

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 15, अंक 2, अगस्त 2008

*चिंतक और चिंतन*

# जिद्दू कृष्णमूर्ति का शिक्षा दर्शन

**सरस्वती अग्रवाल***

भारत की स्वतंत्रता की साठवीं वर्षगांठ के अवसर पर एक प्रतिष्ठित समाचार पत्र ने भारत की ऐसी साठ विभूतियों का चयन किया है जिन्होंने भारतीय समाज, संस्कृति, राजनीति और अर्थव्यवस्था आदि को निर्णयात्मक रूप से प्रभावित किया है। ऐसे 'सुपर सिक्सटी' में दर्शन, अध्यात्मिकता, जीवन व शिक्षा पर मौलिक विचार प्रस्तुत करने वाले जिद्दू कृष्णमूर्ति जी को भी सम्मिलित किया गया है। यह कृष्णमूर्ति जी के विलक्षण व्यक्तित्व का ही प्रभाव है कि जार्ज बर्नार्ड शॉ ने माना,'' कृष्णमूर्ति जैसा सुंदर व्यक्ति दूसरा नहीं देखा''। आचार्य रजनीश ने अपने शिष्यों को आज्ञा दी, '' कृष्णमूर्ति एक सजग व्यक्ति हैं, जाओ उनके चरणों में बैठो''

**अवतरण**

कृष्णमूर्ति जी का जन्म 11 मई 1895 को आंध्रप्रदेश के चित्तूर जिले में स्थित मदनपल्ली नामक छोटे से कस्बे में हुआ था। माता जिद्दू संजीवम्मा तथा पिता जिद्दू नारायणीय की आठवीं संतान होने के कारण इनका नाम कृष्णमूर्ति रखा गया। इनके गांव का नाम जिद्दू था अत: ये जिद्दू कृष्णमूर्ति के रूप में विख्यात हुए।

1905 में माता संजीवम्मा का देहांत हो जाने पर पिता नारायणीय थियोसोफिकल सोसाइटी की अध्यक्षा श्रीमति एनी बेसेन्ट के आमंत्रण पर मद्रास के अड्यार में स्थित थियोसोफिकल सोसाइटी के परिसर में रहने लगे। श्रीमती एनी बेसेन्ट ने विलक्षणता के कारण बालक कृष्णमूर्ति को आगामी 'विश्व शिक्षक' के रूप में देखा फलत: उन्होंने कृष्णमूर्ति जी व उनके छोटे भाई नित्यानन्द को 1909 में अपने संरक्षण में ले लिया। जनवरी

* रीडर और विभागाध्यक्ष (शिक्षाशास्त्र), कानपुर विद्या मंदिर महिला महाविद्यालय, कानपुर

1911 में अड्यार में युवा कृष्णमूर्ति जी की अध्यक्षता में 'आर्डर ऑफ द स्टार इन द ईस्ट' नामक विशाल संगठन की स्थापना हुई। इस सगंठन के सदस्य स्वयं को व विश्व को 'जगत गुरू' के आगमन के लिए तैयार करने हेतु समर्पित थे।

'जगत गुरू' की आगामी भूमिका हेतु प्रशिक्षित करने के लिए कृष्णमूर्ति जी को उनके छोटे भाई नित्यानन्द के साथ 1911 में इंग्लैण्ड भेजा गया। दोनों भाईयों को व्यक्तिगत रूप से शिक्षित करने के लिए ऐसे शिक्षकों की समुचित व्यवस्था की गयी जो आध्यात्मिक प्रशिक्षण के साथ-साथ पश्चिमी सभ्यता का प्रशिक्षण देने में भी समर्थ थे। 1920 में वे पेरिस गये जहां उन्होंने फ्रेंच सीखी। 1921 में श्रीमति एनी बेसेन्ट उन्हें वापिस अड्यार ले आई और इसी समय से सार्वजनिक वक्ता के रूप में कृष्णमूर्ति जी के कठोर जीवन का आरंभ हुआ।

1925 में उनके भाई का देहांत हो गया। इस घटना ने उन्हें पूरी तरह रूपान्तरित कर दिया। वे गुरू व संप्रदाय के पूर्णत: विरोधी हो गये। परिणामत: 3 अगस्त 1929 को हॉलैण्ड में श्रीमति एनी बेसेन्ट तथा 3000 से अधिक सदस्यों की उपस्थिति में 18 वर्ष पूर्व स्थापित संगठन 'आर्डर आफ द स्टार इन द ईस्ट' को उन्होंने भगं कर दिया। कृष्णमूर्ति जी ने थ्योसोफिकल सोसाइटी सहित सभी सगंठनों की सदस्यता से भी त्यागपत्र दे दिया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय कृष्णमूर्ति जी कैलिफोर्निया में रहे तत्पश्चात आगामी जीवन में उन्होंने पूरे विश्व का भ्रमण किया, सार्वजनिक वार्ताएं की, साक्षात्कार दिए, निजी विवेचनाएं, संवाद और लेखन कार्य किया। ये कार्य उन्होंने गुरू के रूप में नहीं वरन् सत्य के प्रति अगाध प्रेम लिए हुए सत्यान्वेषी, पथ प्रदर्शक व मित्र के रूप में किये।

भारत सहित इंग्लैण्ड व अमरीका में कृष्णमूर्ति जी ने विशेष प्रकार के विद्यालय स्थापित किए जहां लगभग प्रत्येक वर्ष वे स्वयं जाते थे। नवम्बर 1985 में कृष्णमूर्ति जी भारत भूमि पर अंतिम बार आए थे।1986 में वे गंभीर रूप से अस्वस्थ हो गए, उनकी पाचन ग्रंथियों में कैंसर हो गया था। लगभग 5 सप्ताह की अस्वस्थता के पश्चात 17 फरवरी 1986 को 91 वर्ष की आयु में कैलिफोर्निया स्थित ओहाई के पाइन कॉटेज में निद्रावस्था में ही उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।

## शिक्षा की रूपरेखा

कृष्णमूर्ति जी प्रारंभ से ही सम्यक् शिक्षा प्रदान करके बालक का समग्र विकास करना चाहते

हैं। सम्यक शिक्षा अर्थात् ऐसी शिक्षा जिसमें वैज्ञानिकता और धार्मिकता, कला और विज्ञान दोनों का समन्वय हो। समग्र विकास से तात्पर्य है– मनुष्य के मन का 'व्यक्ति से समाज में' आधारभूत मनोवैज्ञानिक रूपान्तरण। वे कहते हैं,'तुम ही विश्व हो' अत: मनुष्य के मन में सृजनात्मक क्रांति के द्वारा जीवन के प्रति समग्र दृष्टिकोण उत्पन्न करने हेतु उन्होंने सम्यक शिक्षा की रूपरेखा बनाई।

## शिक्षा का अर्थ

कृष्णमूर्ति जी ने अपनी पुस्तक 'लाइफ अहेड' मे बताया है ''सम्यक शिक्षा और समग्र विकास में सीखना सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया है''। उन्होंने सीखने के अर्थ को इस प्रकार स्पष्ट किया है, ''सीखने का तात्पर्य केवल जानकारियों का संग्रह करना नहीं है बल्कि गहरी समझ.....का होना है''। ज्ञान उपलब्ध करना, तथ्यों को एकत्रित करना, उन्हें परस्पर संबंधित करना अथवा पुस्तकों और सूचनाओं के द्वारा ज्ञान को संकलित करना ही शिक्षा नहीं है। उनके अनुसार, ''शिक्षा का वास्तविक अर्थ स्वयं को समझना है''। उनका विचार है, ''स्वयं को जानने से मेरा आशय है कि प्रत्येक विचार, प्रत्येक मनोदशा, प्रत्येक शब्द, प्रत्येक भाव को जानना, मन के क्रियाकलापों को जानना न कि किसी महान 'स्व' विशाल स्व को जानना''

## शिक्षा के उद्देश्य

व्यक्ति स्वयं को समझ सके, इसके लिए कृष्णमूर्ति जी ने शिक्षा के निम्न उद्देश्य बताए हैं

- जीवन के प्रति समग्र दृष्टिकोण का विकास करना।
- बालक में रचनात्मकता का विकास करना।
- जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास करना।
- प्रतिस्पर्द्धा के स्थान पर सहयोग की भावना को जागृत करना।

## शिक्षण विधि

सीखने की क्रिया शुद्ध अवलोकन की क्रिया है। शुद्ध अवलोकन केवल बाहर की वस्तुओं तक सीमित नहीं है बल्कि जो अपने भीतर घटित हो रहा है उसका भी अवलोकन होना चाहिए। कृष्णमूर्ति जी का मानना है कि प्रचलित विधियों ने बालक के मन की स्वतंत्रता को समाप्त कर दिया है। निरीक्षण, विषय का बालक से संबंध स्थापित करना, संवाद व परिचर्चा ऐसी विधियां हैं जिनसे बालक को ज्ञान व सूचनाएं मिलती हैं और वह स्वप्रयास

व स्व अध्ययन के लिए प्रेरित होता है।

बालक में आलोचनात्मक चिंतन को जागृत करने के लिए आवश्यक है कि हम उसे त्रुटियां करने व उनसे सीखने के लिए स्वतंत्र छोड़ दें।

**तकनीकी शिक्षा**

कृष्णमूर्ति जी ने तकनीकी शिक्षा को गौण माना है। तकनीकी शिक्षा के अनुचित शिक्षण को उन्होंने इस प्रकार रेंखाकित किया है, ''पढ़ने -लिखने का ज्ञान होना, अभियांत्रिकी या कोई और काम सीखना स्पष्ट रूप से आवश्यक है परंतु क्या तकनीक हमें जीवन को समझने की क्षमता प्रदान करेगी? नि:संदेह तकनीक गौण है परंतु यदि तकनीक ही वह वस्तु है जिसे प्राप्त करने में हम लगे हैं तो स्पष्ट है कि जीवन के बहुत बड़े भाग को हम अस्वीकार कर रहे हैं।''

वर्तमान समय में तकनीकी शिक्षा का महत्व अत्याधिक बढ़ गया है परंतु जीवन के भावात्मक पक्ष को समझे बिना केवल कार्य कुशलता का विकास करने से समाज में असुरक्षा, भय और अशांति का वातावरण बन रहा है। इस तरह तकनीकी ज्ञान हमारे मनोवैज्ञानिक दबावों का समाधान न करके विनाश का कारण बन जाएगा। सम्यक शिक्षा तकनीक के साथ-साथ समग्रता पर बल देती है। समग्र विकास का अर्थ है कि बालक के सभी पक्षों का संतुलित विकास हो तथा एक पक्ष के विकास का दूसरे पक्ष के विकास पर नकारात्मक प्रभाव न पड़े।

**बालक और शिक्षक**

कृष्णमूर्ति जी ने माना कि बालक को गुरू की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। आनन्दमयी मां के द्वारा इसका कारण पूछने पर उन्होंने कहा, ''क्योंकि गुरू को लोग लाठी के रूप में प्रयोग करते है'' जबकि सीखने में स्वप्रयास व स्वविवेक का महत्व है। अपनी पुस्तक 'शिक्षा संवाद' में कृष्णमूर्ति जी ने अच्छे अध्यापक के विषय में लिखा है, ''एक शिक्षक के हृदय में चिंता होती है कि कैसे एक नवीन मन में एक नयी संवेदना को, वृक्षों, आकाशों, स्वर्गों, झरनों के लिए एक नवीन अनुभूति को उत्पन्न किया जाए।'' वस्तुत: शिक्षा केवल विषयों की जानकारी नहीं बल्कि प्रकृति के सौंदर्य का रसास्वदन भी है।

अध्यापक किसी शिक्षण विधि पर निर्भर न रहकर अपने शिष्य का अध्ययन करें। वे बालक की जिज्ञासा का सम्मान करते हुए उसे अन्वेषण (खोज) के लिए प्रेरित करें। उनका

यह भी कर्तव्य है कि बालकों को आदर्श के आवरण 'क्या होना चाहिए' से दूर रखें। बालक को बने बनाए सामाजिक ढांचे के अनुसार गढ़ना अनुचित है क्योंकि इससे उसके निजत्व का विकास अवरूद्ध होता है।

उन्होंने बालकों की परस्पर तुलना का विरोध किया है क्योंकि इससे प्रतिस्पर्धा का और प्रतिस्पर्द्धा से ईर्ष्या का जन्म होता है। ''जब एक विद्यार्थी की तुलना दूसरे से की जाए तो याद रखें कि दोनों को हानि पहुंचायी जा रही है। तुलना के बिना जीने का अर्थ है अखण्डता उपलब्ध करना।''

उन्होंने बालकों की 'प्रगति रिपोर्ट' को अनुचित माना है क्योंकि इससे अभिभावक बालकों पर अनावश्यक दबाव डालते है।

कृष्णमूर्ति निष्कर्षत: से कहते है, ''वस्तुत: सीखने की प्रक्रिया में न तो तुलनात्मक मूल्यांकन का कोई स्थान है और न ही किसी प्रकार की कोई सत्ता का। यहां शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों एक साथ मिलकर सीखते हैं और जीवन को समग्रता में समझते हैं''। उनका मत है कि शिक्षक व विद्यार्थी के बीच ऐसा संबंध होना चाहिए जो परस्पर स्नेह व सहयोग पर आधारित हो।

**अनुशासन**

स्वतंत्रता से मनुष्य पूर्ण विकसित होकर वास्तविक अर्थ में मनुष्य बनता है। अत: कृष्णमूर्ति जी बालकों को स्वतंत्रता देने के समर्थक हैं। वे अनुशासन की जगह 'व्यवस्था' शब्द का प्रयोग करते हैं क्योंकि अनुशासन का अर्थ है 'आज्ञा पालन' और आज्ञा पालन में स्वतंत्रता नहीं है। जबकि व्यवस्था के लिए स्वतंत्रता आवश्यक है। उनका मत है कि, ''मैं सावधानी से स्पष्ट कर चुका हूं कि स्वतंत्रता बिना व्यवस्था के नहीं आ सकती...।

भय व दण्ड पर आधारित शिक्षा से सीखने में बाधा पड़ती है क्योंकि इससे बालक की जिज्ञासा, बुद्धि व चहलकदमी पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। शिक्षा केवल आर्थिक विकास के लिए नहीं बल्कि मानव के विकास के लिए दी जाती हैं अत:मनुष्य के आनन्द को भी पूर्णता में देखना चाहिए। शारीरिक स्वास्थ्य व सुख भले ही आनन्द का छोटा हिस्सा हों परंतु महत्वपूर्ण है । आवश्यक है कि हम दण्ड व पुरस्कार की प्रथा को छोड़कर ऐसी व्यवस्था अपनाएं जिसमें बालक वही विषय पढ़े जिसमें उसे आनन्द प्राप्त हो, ये आनन्द उसके लिए उत्प्रेरिक सिद्ध होगा।

## विद्यालय

कृष्णमूर्ति जी का मानना है कि विद्यालय को केवल शैक्षिक दृष्टि से ही श्रेष्ठ नहीं होना चाहिए बल्कि उन्हें समग्र मानव के निर्माण से जुड़ना चाहिए। विद्यालय की संकल्पना को उन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया है, '' एक स्कूल का अर्थ है वह जगह जहां विद्यार्थी मूल रूप से प्रसन्न और आनन्दित है, जहां उसे डराया, धमकाया नहीं जाता। वह परीक्षाओं से भयभीत नहीं है, तथा जहां उसे एक ढांचा या पद्धति के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य नहीं किया जाता।''विद्यालय को'अवकाश' का ऐसा स्थान होना चाहिए। जहां विद्यार्थी का आंतरिक रूपान्तरण हो। उन्हें ऐसी जीवन शैली सिखाई जाए जिसका महत्व और उपयोगिता परंपरागत शिक्षा से प्राप्त ज्ञान के संग्रह से बहुत अधिक हो।

यह भी आवश्यक है कि विद्यालय में शिक्षक स्वयं को आर्थिक व मनोवैज्ञानिक रूप से सुरक्षित अनुभव करें क्योंकि तभी वे अपनी पूरी क्षमता का उपयोग करने में समर्थ होंगे।

व्यक्ति ही समाज है। अत: व्यक्ति में अनुकूल परिवर्तन लाकर ही समाज में सकारात्मक बदलाव लाया जा सकता है। कृष्णमूर्ति जी शिक्षा के द्वारा हिंसात्मक समाज के स्थान पर नवीन समाज का निर्माण करना चाहते थे।

## संदर्भ

अग्रवाल, सरस्वती 2006, सत्यान्वेषी जिद्दू कृष्णमूर्ति, अप्रकाशित लेख।

कृष्णमूर्ति जे. 1996, *सत्य एक पथहीन भूमि है,* वाराणसी: जे कृष्णमूर्ति प्रज्ञा परिषद।

कृष्णमूर्ति जे. 1997, *ध्यान में मन, वाराणसी:* कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इंडिया।

कृष्णमूर्ति जे. 1998 स्कूलों के नाम पत्र भाग-1, वाराणसी: कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इंडिया।

कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इंडिया, *जे. कृष्णमूर्ति :एक परिचय* वाराणसी।

कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इंडिया, *जे. कृष्णमूर्ति :जीवन परिचय एंव रचनाएं,* वाराणसी।

कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इंडिया, परिसंवाद, वर्ष-1 अंक 4, जून 2007, वाराणसी।

विश्वकर्मा, एम.आर.,1995 *जे.कृष्णमूर्ति का शिक्षा-दर्शन,* वाराणसी: प्रज्ञा एवमं दिव्या प्रकाशन।

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 15, अंक 2, अगस्त 2008

*समीक्षालेख*

# भारतीय शिक्षा व्यवस्था का सम्यक दिग्दर्शन

**हरिकेश सिंह***

**पर्सपेक्टिव ऑन एजुकेशन एण्ड डेवलपमेंट: रिविजिटिंग एजुकेशन कमीशन एंड ऑफटर,** संपादकद्वय : वेद प्रकाश एवं के. बिसवाल, शिप्रा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, (208), पृष्ठ संख्या xiii+ 721, मूल्य रु. 1500/-

समीक्षान्तर्गत चयनित ग्रन्थ एक ऐसी राष्ट्रीय संगोष्ठी का उत्पाद है जो भारतीय शिक्षा की राष्ट्रीय नवीननीति एवं प्रणाली के द्रष्टा एवं मनीषी, डा. दौलत सिंह कोठारी की जन्म शताब्दी वर्ष पर आयोजित की गयी थी। शिक्षा आयोग (1964-66) के अध्यक्ष प्रो. दौलत सिंह कोठारी एक ऐसे शिक्षा शिल्पी रहे हैं, जिन्होंने भारत में शिक्षा के मौलिक निहितार्थ के साथ मात्र दार्शनिक न्याय ही नहीं किया, अपितु भविष्यगत चुनौतियों एवं समाज रचना की संभावनाओं को समझते एवं उनका स्वरूप निर्धारण करते हुए समाधान भी प्रस्तुत किया। राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) नई दिल्ली जिसका पूर्वनाम विश्वविद्यालय की जगह संस्थान था अर्थात नीपा) ने एक ऐसे अविस्मरणीय शैक्षिक ग्रन्थ को उपयुक्त समय पर प्रकाशित किया है, जो वास्तव में कोठारी आयोग का नवीनीकृत संस्करण प्रतीत होता है। समीक्ष्य ग्रन्थ ऑग्ल भाषा में कुल सात अध्यायों एवं आद्योपान्त ( xiii+ 721) 734 पृष्ठों में संगठित है।

प्रस्तुत ग्रन्थ आज की प्रचलित सरलतम प्रकाशन विधा से अलग है, क्योंकि इसमें संगोष्ठी के सभी आलेखों को यथावत नहीं छाप दिया गया है। पुस्तक के संपादक ने इसका उल्लेख स्पष्टत: कर दिया है कि संगोष्ठी में प्रस्तुत किये गये उच्च गुणवत्ता वाले आलेखों को उनके प्रस्तुतकत्ताओं द्वारा परिमार्जित करने के उपरान्त भी संशोधित एवं संपादित किया

* प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, शिक्षा-आधार विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110016

गया है। इस ग्रन्थ की सामग्री के अध्ययन से यह स्पष्टत: परिलक्षित होता है। विगत चार दशकों में (अर्थात कोठारी आयोग के आधार पर संसद द्वारा पारित 1968 की राष्ट्रीय नई शिक्षा नीति (10+2+3 के बाद) भारत में घटित शैक्षिक परिदृश्य का विहंगम अवलोकन एवं आकलन करने के उपरान्त जो शैक्षिक परिवर्तन हुआ है, उसका विशद् विवरण तो इस ग्रन्थ में समावेशित है ही, इसके साथ ही साथ नये भारतीय समाज की संरचना में शिक्षा की संभावित समावेशी अभिकल्प की रूपरेखा का आलेखन भी इंगित है। इस प्रकार यह ग्रन्थ शैक्षिक उपदेयता से परिपूर्ण प्रतीत होता है।

पुस्तक को साद्योपान्त पढ़ने के उपरान्त इसकी विषय सामग्री की गुणवत्ता का स्वत: बोध होता है। इसकी समस्त सामग्री के संयोजन क्रम को प्राक्कथन पूर्वपृष्ठ से लेकर निर्देशाकों तक सुव्यस्थित रूप में देखा जा सकता है। न्यूपा के कुलाधिपति श्री सुदीप बनर्जी ने प्राक्कथन में लिखा है कि इस पुस्तक में कोठारी आयोग द्वारा चिन्हित परिवर्तन के मूलभूत सम्प्रत्ययों एवं कारकों को पुनर्विवेचित किया गया है तथा विद्वानों द्वारा लिखित 23 आलेखों के अन्दर यह स्पष्टत: व्याख्यायित किया गया है कि कोठारी आयोग की संस्तुति में समकालीन भारतीय शिक्षा प्रणाली पर क्या प्रभाव पड़ा है। (पृ. 6) इस पुस्तक के प्रधान संपादक एवं न्यूपा के कुलपति प्रो. वेद प्रकाश ने पुस्तक के पुर्वाभिमुख में कोठारी आयोग के शीर्षक *'शिक्षा एवं राष्ट्रीय विकास'* की उपयुक्तता पर सहमति व्यक्त करते हुए लिखा है कि यह पुस्तक कोठारी आयोग के उपरान्त के सम्पूर्ण परिवर्तनों के आलोक में भारतीय शिक्षा के रूपान्तरण की नवीन आवश्यकताओं को पहचानने तथा उन्हें कार्यान्वित कराने के उपागमों को तैयार कराने में सहायक होगी (पृष्ठ 8)

इस पुस्तक की समस्त पाठ्य सामग्री तार्किक क्रम से आबद्ध है। सात भागों (अध्यायों) में संगठित विषय सामग्री में सबसे पहले *'परिप्रेक्ष्य ध्येय एवं मूल्यों'* को समावेशित किया गया है। 980 पृष्ठों में चार शिक्षाविदों सर्वश्री प्रो सी. शेशाद्रि, प्रो. एम. आनदकृष्णन, प्रो. एम.एस. यादव एवं प्रो. अर्जुनदेव के शोधपरक पत्र हैं जो भारतीय समाज, शिक्षा एवं मूल्यों के नीति परिप्रेक्ष्यों पर प्रकाश डालते हैं। सभी लेख उच्च स्तरीय एवं प्रामाणिक सूचनाओं से परिपूर्ण हैं। दूसरे अध्याय 'समानता एवं सामाजिक न्याय' में कुल छ: शिक्षाशास्त्रियों यथा प्रो. आर. गोविन्द, प्रो. आर.पी. सिंह, प्रो. पद्मा वेलास्कर, डा. मदन मोहन झा एवं, प्रो. सुदेश मुखोपाधाय, एवं डा. अनीता घई के विचार भारतीय शिक्षा में शैक्षिक अवसरों की सुविधा एवं दुविधा से संबंधित हैं। इस अंश में सामाजिक न्याय के

निमित्त वंचित वर्ग की शिक्षा को सुनिश्चित करने के प्रभाववादी उपाय भी सुझाये गये हैं तथा शैक्षिक समावेशीकरण की आवश्यकता को समझाने का सफल प्रयास किया गया है।

पुस्तक के तृतीय भाग(अध्याय) 'पाठ्यक्रम, शिक्षण विज्ञान एवं ज्ञान' के अंतर्गत कुल पाँच चिन्तकों– सर्व श्री प्रो. अनिल सद्गोपाल, डा. एम.ए. खादर, मो. अख्तर सिद्दकी, प्रो. ए.के. शर्मा एवं डा. विजय एस. वर्मा के लेख कोठारी आयोग के उपरान्त की उपलब्धियों, एवं असफलताओं की व्याख्या करते हैं। चौथे अंश (अध्याय) *'नियोजन एवं शासन'* के अंतर्गत मात्र दो आलेख प्रस्तुत किये गये है जो सामाजिक रूपान्तरण हेतु शैक्षिक नवशासन, तथा स्वायत्तता निजीकरण एवं व्यावसायीकरण पर केंद्रित हैं। इस अंश के लेखक श्री शरद चन्द्र बेहर एवं सुश्री मधु प्रसाद हैं। पाँचवे अंश का शीर्षक संसाधन एवं राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था है। इसमें शिक्षा के अर्थशास्त्र के मूर्धन्य विद्वान प्रो. जान्ध्याला बी.जी. तिलक का शिक्षा के वित्तीय नियोजन पर आलेख है जो प्रदत्तों एवं उनपर आधारित निष्कर्षों से सम्पन्न है। इसी प्रकार छठें अंश (अध्याय) *'शिक्षा आयोग का ज्ञान के प्रति प्रत्यक्षीकरण'* पर मात्र डा. पुष्पा एम. भार्गव का 'राष्ट्रीय विकास के लिए ज्ञान' का पत्र है, जो नीतिगत परिप्रेक्ष्यों की तर्कपूर्ण प्रस्तुति में सक्षम है। पुस्तक के सातवें अंश में कुल चार आलेख हैं जो समकालीन सन्दर्भ एवं भविष्य की चुनौतियों से संबंधित हैं। इस अंश के विद्वान लेखक सर्वश्री प्रो. राम टकवाले, प्रो. एच.पी. दीक्षित, डा. हृदय कान्त दीवान, डा. दिनेश अब्रोल तथा एल. पुलाम्ते हैं। इसमें प्रो. टकवाले एवं प्रो. दीक्षित ने दूरस्थ शिक्षा के सामर्थ्य एवं इसकी सम्भावनाओं पर विशद प्रकाश डाला है। डा. हृदयकान्त दीवान ने प्रौढ़ शिक्षा के महत्व को समझाया है तथा डा. दिनेश अब्रोल एवं डा. पुलाम्ते ने कृषि विश्वविद्यासलयों की शैक्षिक चुनौतियों के निवारण हेतु रणनीतियों को कोठारी आयोग के आलोक में विवेचित किया है।

पुस्तक में उपरोक्त सात भागों (अंशों अथवा अध्यायों के उपरान्त 6 पृष्ठों में मुख्य निष्कर्ष बिन्दुओं को व्यक्त किया यहै तथा उसके उपरान्त लेखकों के परिचय 7 पृष्ठों में आवद्ध, हैं। अंतिम 10 पृष्ठों में पुस्तक में आये प्रमुख शब्दों, सम्प्रत्ययों एवं सन्दर्भों का निर्देशांक दिया है।

पुस्तक की पाठ्यसामग्री (विषयवस्तु) की गुणवत्ता पर विहंगम दृष्टिपात करने से यह प्रतीत होता है कि पुस्तक का समस्त सार पुस्तक की प्रस्तावना में ही निष्कर्षित कर दिया गया है। प्रस्तावना कुल 35 पृष्ठों में प्रमुख संपादक द्वारा लिखी गई है जो संगोष्ठी के

आयोजन की अपेक्षाओं से प्रारंभ होकर पुस्तक की समस्त रचनाओं का सार प्रस्तुत करती हुई इस पुस्तक के मूल निष्कर्ष पर समाप्त होती है। 'प्रस्तावना' अपेक्षाकृत दीर्घ प्रतीत होती है, परन्तु इस पुस्तक के पाठक को प्रारंभ में पुस्तक की समस्त सामग्री के प्रतिपाद्य आख्यानों से परिचित कर देती है, जिससे पाठक को कहीं न कहीं आगे के विस्तृत लेखों को सरलतापूर्वक सारांशित करने में सुविधा होगी। शोधपत्रों अथवा लेखों के क्रम में प्रथम लेख प्रो. शेशाद्रि का है जिसके अन्तर्गत उन्होंने कोठारी आयोग तथा वर्तमान भारतीय परिदृश्य, दोनों को आमने-सामने रखकर समाज, शिक्षा एवं मूल्य पर विद्वत न्याय किया है। इस लेख के प्रारम्भ में ही कोठारी आयोग की श्रेष्ठताओं को इंगित करते हुए लेखक में श्री जे.पी.नाइक एवं गुन्नार मिडाल के सकारात्मक कथनों को उद्धृत किया है। यह लेख तीन उपगामों में विभक्त है, पहले भाग में भारतीय समाज की कोठारी आयोग कालीन परिस्थितियों एवं सामाजिक आंकाक्षाओं का विशद् विश्लेषण है। दूसरे भाग में शिक्षा की भारतीय राष्ट्रीय प्रणाली को अवस्था, व्यवस्था एवं अव्यवस्था पर विमर्श है, तथा तीसरे भाग में मूल्यों की आवश्यकता एवं शिक्षा के द्वारा समाज में मूल्यों की स्थापना की सम्भावना पर विचार हैं। लेख में कोठारी आयोग की तुलना ब्रिटेन के प्लाउडेन रिपोर्ट से करते हुए प्रो. शेशाद्रि ने प्रो. पीटर्स को उद्धृत किया है कि इस रिपोर्ट ने अभूतपूर्व शैक्षिक सिद्वान्तों का प्रतिपादन किया है (पृ.सं. 40) इस लेख का सर्वाधिक आकर्षक एवं दार्शनिक सम्पन्नता वाला अंश धर्म निरपेक्षता, संस्कृति एवं आध्यात्मिकता का है (पृष्ठ 46 से 48 तक), जिसमें कोठारी आयोग द्वारा गांधी, टैगोर एवं विवेकानन्द जी के आदर्शो को उच्चतम स्थान प्रदान करने की संस्तृति दी गई है। लेखक ने 50 से भी अधिक प्रशासनिक ग्रन्थों एवं दस्तावेजों का सहयोग लेकर इस गुणवत्तापूर्ण शोधात्मक लेख को पूर्ण किया है, (पृष्ठ 77-79)।

प्रो. आनंदकृष्णन् ने अपने शोधपूर्ण निबन्ध में कोठारी आयोग का पुनरावलोकन करते हुए शिक्षा के नीति परिप्रेक्ष्यों लक्ष्यों एवं मूल्यों को स्पष्टता प्रदान दी है। लगभग 15 राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ सामग्रियों एवं लेखक की अपनी मननशीलता पर आधारित यह निबन्ध आधुनिक भारतीय समाज में शैक्षिक पुनर्निर्माण के लिए एक आधार-पत्र जैसा है। भारत के भूतपूर्व शिक्षामंत्री श्री एम.सी. छागला को कोठारी आयोग की रिपोर्ट सौंपते हुए प्रो. दौलत सिंह कोठारी ने जिन महत्वपूर्ण भावों को व्यकत किया था, उसे ही प्रो. आनंदकृष्णन् जी ने अपने आलेख का मूलोनुच्छेद बनाया है (पृ0 80)। शैक्षिक अवसरों की समानता के नीतिगत प्रश्नों का सटीक उत्तर देते हुए इस लेख में ठोस शैक्षिक संरचना एवं प्रणाली

निर्माण हेतु अर्थशास्त्रीय प्राचलों के न्यायपूर्ण निर्धारण की सशक्त संभावनाओं को भी प्रस्तावित किया गया है। भारत में शिक्षाजगत में सामाजिक न्याय को प्राणवान बनाने में डा. आनंदकृष्णन् की अपेक्षाओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस लेख में निष्कर्ष का अंतिम वाक्य श्री जे.पी.नाईक की महत्वपूर्ण पुस्तक 'एजूकेशन कमीशन एण्ड आफटर' के आमुख में व्यक्त किये भाव से मेल खाता है कि भारत में राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के निर्माण एवं इसकी सफलता हेतु केवल धनराशि के आवंटन का नहीं है, अपितु राष्ट्रीय दृढ़ संकल्पशक्ति की आवश्यकता है।

पुस्तक के प्रथम भाग के तृतीय निबन्ध समाज शिक्षा एवं विकास पर शिक्षा आयोग का नीति परिप्रेक्ष्य में प्रो.एम.एस.यादव ने 30 पृष्ठों में एवं 37 महत्वपूर्ण संदर्भ सामग्री के सहयोग से भारत में स्वतंत्रता से पूर्व 20वीं शताब्दी में जो शैक्षिक आकांक्षाएं बनी उनका ऐतिहासिक पक्ष उद्धृत किया है। भारत की वर्तमान शैक्षिक समस्याओं के जटिल से जटिलतर होने वाले कारकों को बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से रेखांकित करते हुए प्रो.यादव का यह निबंध एक ओर जहाँ प्रो.आन्नदकृष्णन के लेख का समानभावी प्रतीत होता है, वहीं एक समावेशी लोकतांत्रिक समाज के निमित्त उपयुक्त शिक्षा प्रणाली बनाने हेतु प्रस्ताव पत्र के रूप में भी दीखता है। तर्क, तथ्य एवं आंतरिक सटीकता से यह निबन्ध पठनीय है। इसमें दिश निर्देश भी मिलते हैं।

प्रथम भाग के चौथे एवं अंतिम निबंध में प्रो. अर्जुन देव ने पृथकीय विद्यालयीय शिक्षा के दोषों को उजागर किया तथा आयोगोत्तर काल में एक सर्वसामान्य विद्यालयीय शिक्षा प्रणाली के औचित्य को स्थापित किया है। 10 पृष्ठों के इस निबन्ध में लेखक ने शैक्षिक संस्थाओं द्वारा पोषित हो रही अमानवीय विषमताओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया है तथा सुझाव प्रस्तुत किया है कि भारतीय लोकतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था के कल्याण हेतु सर्वसामान्य एकरूपी विद्यालयीय शिक्षा प्रणाली विकसित की जानी चाहिए। उनका यह स्पष्ट मत है कि भारत में संस्थागत् विभिन्नताएं सामाजिक एकीकरण एवं सद्भाव को नष्ट कर रही हैं, साथ ही साथ समतामूलक समाज को हानि पहुंचाने वाले 'सम्पन्न वर्ग' को निर्मित करने में भी सहायक हो रही हैं। 'कुछ के लिए' उत्कृष्ट शिक्षा' की दलील 'सर्व के लिए न्यूनतम शैक्षिक अवसर' की संभावना को प्रतिक्षण क्षीणतर बनाती जा रही है। प्रो. देव ने संदर्भों को तो कम ही लिया है परन्तु अपनी मूल प्रस्थापना को प्रतिबद्धता के शब्दों के साथ इस निबंध में रखने का सफल प्रयास किया है।

पुस्तक के द्वितीय भाग '*समानता एवं सामाजिक न्याय*' में कुल पांच आलेख हैं। प्रथम आलेख में प्रो. आर. गोविंद ने *'साक्षरता और प्रारंभिक शिक्षा'* पर विशद् विवेचन प्रस्तुत करते हुए प्रचुर आकड़ों की सहायता से लगभग 45 पृष्ठों में भारतीय संदर्भ में क्षेत्रीय असंतुलन एवं सामाजिक विषमताओं का उल्लेख किया है। लेखक ने स्पष्ट लिखा है कि विकास को कभी भी तदर्थ उपायों से जोड़कर कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है (पृ. 196)। '*शैक्षिक विकास में क्षेत्रीय विषमताएं*' शीर्षक पर संक्षिप्त परंतु सारगर्भित लेख में प्रो. आर.पी. सिंह ने समावेशी शिक्षा को समावेशी समाज की आवश्यकता बताया है। डा. पद्मा वेलस्कर का लेख '*दलितों की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय प्रतिबद्धता*' पर टिप्पणी करते हुए कोठारी आयोग की मौलिक संस्तुतियों का पुनःस्मरण कराया है तथा निष्कर्षतः कहा है कि वंचित को शैक्षिक अवसरों को सुनिश्चित करते समय उनके लिए 'विशेष अवसरों' का प्रावधान अवश्य करना चाहिए (पृ. 227)। लगभग समान दृष्टिकोण डा. मदन मोहन झा के लेख '*भारतीय शिक्षा नीतियों में समेकीकरण*' में भी मिलता है। डा. झा ने भारतीय संविधान के दो अनुच्छेदों 13(2) और 21(अ) की आंतरिकता का विवेचन करते हुए (पृ. 256), यह प्रतिपादित किया है कि 'पृथक विद्यालयों की वृद्धि' एक दुःखद शैक्षिक प्रक्रिया है (पृ. 256)।

पुस्तक के द्वितीय भाग में ही चौथा महत्वपूर्ण शोधात्मक निबंध *'शिक्षा आयोग की समावेशी शिक्षा पर दृष्टि'* एक दीर्घ यात्रा का शुभारम्भ है, जिसमें लेखिका ने विस्तृत प्रदत्तों एवं उद्धरणों की सहायता से समावेशी शिक्षा के समस्त पक्षों पर प्रकाश डाला है। इस लेख में भविष्य में आने वाली चुनौतियों के संदर्भ को ध्यान में रखते हुए चुनौतीयुक्त अधिगमकर्त्ताओं के समावेश की संभावनाओं को बताया गया है। डा. अनिता घई ने अपने लेख 'लिंग एवं सभी स्तरों पर शिक्षा' (पृ. 290–319) में महत्वपूर्ण शैक्षिक विरोधाभासों को सामने रखा है। समान विद्यालयों की आवश्यकता पर बल देते हुए उन्होंने समतामूलक समाज के लिए 'समावेशी आंदोलन' को सार्थक बताया है।

पुस्तक के तृतीय भाग *'पाठ्यक्रम शिक्षण विज्ञान एवं ज्ञान'* में कुल पाँच आलेख हैं। प्रथम आलेख में प्रो. अनिल सद्गोपाल ने अपने लेख 'पाठ्यक्रम में कार्य के स्थान पर नीतिगत बहस का अर्थबोध' में महात्मा गांधी के 'हरिजन' में 18 फरवरी 1938 के शिक्षक प्रशिक्षकों के साथ के विमर्श के उद्धरण को लेख की प्रस्तावना का आधार बनाया

है। इस उद्धृत अंश का मूलतत्व ही श्रमाधृत शिक्षा है (पृ. 323) डा. सद्गोपाल ने इस लेख में एक जगह कोठारी आयोग के वर्ग 4(6) के भाव को कुछ अन्यथा ही समझा है, जब वे इसे 'नीति लक्ष्य : हिचकिचाहट से भ्रम तक' (पृ. 331) में मानकात्मक अभिव्यक्ति के रूप में देखते हैं। प्रो. सद्गोपाल एक मौलिक विचारक हैं, परंतु इसी लेख के सारांश में वे पूर्व प्राथमिक से ही 'कार्य शिक्षा' का आधार डालने की बात कर रहे हैं, तथा एन.सी.ई. आर.टी. के राष्ट्रीय पाठ्यक्रम प्रारूप को विद्यालयीय शिक्षा का क्रांति पत्र बता रहे हैं। इसका अभी मूल्यांकन करना समीचीन नहीं होगा। श्रम संस्कृति से समृद्ध इस राष्ट्र के औपचारिक विद्यालयों के औपचारिक पाठ्यक्रम में 'समाजोपयोगी उत्पादक कार्य' के माध्यम से कार्य का जितना उपहास हो रहा है, वह राष्ट्रीय रोग है।

पुस्तक के इसी भाग में 'शिक्षक-शिक्षा' पर दो लेख प्रो. एम.ए.खादर एवं प्रो. एम. ए. सिद्दीकी द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। दोनों लेख के लेखकों ने शिक्षक शिक्षा की चिन्ताजनक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए उसके नये प्रतिमान को सुझाने का प्रयास किया है। प्रो. खादर ने नये रूप हेतु सुझाव दिया है, तो प्रो. सिद्दकी ने शिक्षक-शिक्षा को समग्रता के साथ अभिकल्पित करके नवजीवन प्रदान करने की संस्तुति की है। यदा-कदा नवीन एवं मौलिक प्रस्थापनाओं को सुझाने में प्रो. खादर का लेख महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। प्रो. सिद्दीकी ने शिक्षकों के निमित्त सतत् शिक्षा के पक्षधर हैं। प्रो. ए.के. शर्मा (पूर्व निदेशक एन. सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली) ने शिक्षक-शिक्षा पर अपने सुसंगठित लेख में शिक्षक शिक्षा के महत्वपूर्ण आख्यानों को निरूपित किया है। प्रो. शर्मा ने शिक्षक-शिक्षा के आमूल-चूल परिवर्तन हेतु गुणवत्तापूर्ण अभ्यार्थियों की भर्ती, शिक्षक-शिक्षा को अव्यावसायी रूप में लेना, मूल्यपरकता, जनशक्ति नियोजन एवं शिक्षक शिक्षा की पृथकता को तोड़ने जैसे महत्वपूर्ण बिन्दुओं को रेखांकित किया है। डा. विजय एस. वर्मा ने कोठारी आयोग की पाठ्यक्रम संबंधित विशेषताओं को पहचाना है। इन्होंने अपने आलेख में मुख्य रूप से पुनर्रचनावाद, समुदाय सहभागिता, समान विद्यालय, कार्य शिक्षा एवं राष्ट्रीय सेवा नवीन विज्ञान एवं नवीन विज्ञान पुस्तकें तथा पाठ्यक्रम संबंधित नवाचारों पर अकादमिक टिप्पणी भी की है, जो अधिकांशत: उचित प्रतीत होती है।

पुस्तक के चतुर्थ भाग 'नियोजन एवं शासन' में कुल दो लेख हैं। पहला लेख शैक्षिक प्रशासन में दीर्घ अनुभव रखने वाले श्री शरद् चन्द्र बेहर का है जिन्होंने 'सामाजिक

रूपांतरण हेतु शैक्षिक शासन पर पुनर्चिन्तन पर लिखते हुए कोठारी आयोग के महत्वपूर्ण अंशों का उल्लेख किया है। संस्थागत परिवर्तन (पृ. 441), सामाजिक रूपातंरण के लिए शिक्षा (पृ. 445) तथा राज्य नागरिक समाज एवं निजी उपक्रमों की भूमिका (पृ. 445) पर विशेष बल दिया है। श्री बेहर का 'प्रतिभा शक्ति प्रबंधन हेतु शैक्षिक शासन' वाला अंश तर्कपूर्ण एवं नवीन है (पृ. 453)। डा. मधु प्रसाद का 'उच्च शिक्षा में स्वायत्तता, निजीकरण एवं व्यापारीकरण' एक स्तरीय आलेख है। लेख का प्रथम भाग (पृ. 479–80) स्वायत्तता के दार्शनिक एवं ऐतिहासिक पहलुओं को समर्पित है। इस लेख में 1988 की स्वायत्तता एवं शैक्षिक स्वतंत्रता पर आधारित सीमा को 'उदार भावमंथन' का विषय बताया है। लेख में 'लोकवित्त निर्भर संस्थायें बनाम उद्यमशील विश्वविद्यालयों' की चर्चा स्पष्ट शब्दों में की गई है (पृ. 485)। स्वायत्तता एवं दायित्व पर विचार सामान्य हैं। डा. प्रसाद ने पृ. 490 में विश्वविद्यालयीय शिक्षा में निजी प्रयासों की वकालत की है, जो लोकतांत्रिक शैक्षिक प्रणाली के लिए घातक होगा। इस पर गंभीर चिंतन अपेक्षित है।

पुस्तक के पंचम भाग '*राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था एवं संसाधन*' में डा. जे.बी.जी. तिलक का एकमात्र निबंध कोठारी आयोग के शैक्षिक वित्त के संकेतों पर आधारित है। लेख कोठारी आयोग के पृ. 889 के उस महत्वपूर्ण वाक्य से ही शुरु होता है जिसमें कोठारी आयोग ने सकल राष्ट्रीय उत्पाद का अधिकतम भाग शिक्षा पर खर्च करने की सिफारिश की थी (पृ. 503)। लेखक ने प्रारंभ में डा. कोठारी, डा. जे.पी. नाईक, एवं डा. शुल्ज के शैक्षिक विचारों को आधार बनाकर भारत में शिक्षा पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 6 प्रतिशत संसाधन निर्धारित करने का औचित्य ठहराया (पृ. 505) है। अपने तर्क की दृष्टि हेतु लेखक ने पर्याप्त प्रदत्त एवं उनपर आधारित रेखाचित्र प्रस्तुत किया है। शिक्षा में व्यय हेतु शोधवृत्ति, राज्य सरकारों के द्वारा किये जाने वाले योगदान, केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रायोजित अनुदान योजनाओं, स्थानीय शासन को प्रदान की जाने वाली वित्तीय सुविधाओं आदि के बारे में सविस्तार चित्रण है। लेखक ने निश्चित रूप से इस लेख की तैयारी में राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय महत्व के दस्तावेजों का सहारा लिया है, जो प्रशंसनीय है।

पुस्तक का षष्ठ भाग '*शिक्षा के आयोग का ज्ञान के प्रति प्रत्यक्षीकरण*' में भी जाने माने विद्वान एवं वैज्ञानिक प्रो. पुष्प एम. भार्गव का 'राष्ट्रीय विकास के लिये ज्ञान' मात्र एक ही आलेख है। यह एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित है। प्रो. भार्गव ने

आधुनिक ज्ञान के 15 महत्वपूर्ण निहितार्थों को गिनवाया है (पृ. 532)। इसीप्रकार नागरिकों के प्रकार को 39 रूपों में देखा है (पृ. 534 से 537 तक)। किसी भी छात्र अथवा व्यक्ति की संभावित शैक्षिक वरीयताओं को चित्र (19.1) (पृ. 538) पर प्रस्तुत किया है। लेखक ने 16 महत्वपूर्ण सुझावों (पृ. 539 से 543 तक) द्वारा विद्यालयों को सामाजिक आवश्यकताओं के लिए उत्तरदायी बनाने हेतु संस्तुति की। उच्च शिक्षा की गुणवत्ता हेतु 8 महत्वपूर्ण बिन्दु सुझाये गये हैं। कृषि शिक्षा एवं ग्रामीण क्षेत्र में शोध एवं प्रसार कार्यों को 20 बिन्दुओं में व्यक्त किया गया है। ग्रामीण विकास हेतु ग्रामीण जन को पंचायती राज के माध्यम से 22 महत्वपूर्ण कार्यक्रमों को प्रस्तुत किया गया है (पृ. 550)। डा. भार्गव ने परम्परागत ज्ञान की अवहेलना नहीं की है अपितु पाँच प्रमुख प्रकार के ज्ञान को विस्तार प्रदान करने हेतु निवेदन किया है, यथा – वनस्पति आधारित औषधियां, परंपरागत कृषि कार्य विधि, परंपरागत जल संरक्षण, सृजनात्मक एवं सांस्कृतिक प्रचलन तथा पर्यत्न। इस लेख में भविष्य में लिये जाने और किये जाने वाले शोधों एवं प्रसार क्रियाओं का संकेत मिलता है। यह लेख ज्ञान की समग्र दृष्टि से उच्च स्तरीय है।

पुस्तक का सप्तम् भाग – '*समकालीन संदर्भ एवं भविष्यगत् चुनौतिया*' में चार लेख हैं। प्रो. राम टकवाले ने कोठारी आयोग द्वारा उद्घाटित शिक्षा के नये विचारों को संस्थागत ढंग से लक्ष्य बनाने की संस्तुति करते हुए खुली एवं दूरस्थ शिक्षा पर विशेष जोर दिया है। लेखक ने कोठारी आयोग की संस्तुतियों को आधार बनाकर दूरस्थ शिक्षा अभियान को सार्थकता प्रदान करने की आवश्यकता को बताया है। लगभग समान दृष्टिकोण का आलेख प्रो. एच.पी. दीक्षित ने भी प्रस्तुत किया है जिसमें पृ. 601 पर स्वामी विवेकानंद, पं. जवाहर लाल नेहरू एवं डा. ए.पी.जे. कलाम के कथनों के माध्यम से मूल्याधारितशिक्षा की भी आवश्यकता को बताया है। इन्होंने भी पिछले दशकों में पत्राचार पाठ्यक्रम में हुई प्रगति के आधार पर दूरस्थ शिक्षा को संस्थागत ढंग से विकसित करने हेतु सुझाव दिया है। तृतीय लेख में डा. हृदयकांत दीवान ने प्रौढ़ शिक्षा की नवीन मान्यताओं को आधार बनाकर इसे गतिशील शैक्षिक उपादान बनाने हेतु पैरवी की है। डा. दीवान ने निकारागुआ जैसे अन्तरराष्ट्रीय शैक्षिक नवाचारों की ओर इंगित करते हुए भारत में प्रौढ़ शिक्षा को लोकविकास एवं प्रगति का सार्थक उपकरण बनाते हुए तथ्यों पर आधारित कार्यक्रम सुझाया है। इस भाग का अंतिम परंतु सर्वाधिक शोधपरक लेख 55 पृष्ठों में आबद्ध है जो ''भारत में कृषि विश्वविद्यालयों के समक्ष चुनौतियों' नामक शीर्षक पर लिपिबद्ध है। यह लेख भारतीय एवं

अंतरराष्ट्रीय परिवेश में कृषि, कृषि शिक्षा एवं शोध पर अद्‌भुत सामग्री प्रस्तुत करते हुए उत्पादन एवं खाद्यान्नों के घोर से घोरतम होते हुए संकटों को दर्शाया है, एवं इनके निराकरण हेतु मूर्त कार्यक्रमों की रूपरेखा भी प्रस्तुत किया है। सही अर्थों में भारत में पोषणीय विकास के लिए यह लेख आज्ञा-पत्र जैसा है।

पुस्तक के अंतिम भाग में सभी लेखकों का संक्षिप्त परिचय है तथा अंत में (पृ. 612 से 621) पुस्तक के महत्वपूर्ण संप्रत्ययों, तथ्यों, नामों आदि का निर्देशांक है। पुस्तक का टंकण ठीक है। भाषागत् त्रुटियाँ भी नहीं हैं। भाषा प्राञ्जल है। भारत की शिक्षा व्यवस्था में रुचि रखने वालों को सामान्य रूप से तथा शिक्षाशास्त्र के अध्येताओं के लिए विशेष रूप से यह पुस्तक महत्वपूर्ण है। इसका अवलोकन करना, भारत की शैक्षिक व्यवस्था का सम्यक दिग्दर्शन करने जैसा है। इस पुस्तक में भारत के शैक्षिक भविष्य को समझाने की पूर्ण क्षमता है। भारत में प्रकाशन उद्यम के अर्थशास्त्र को उपयुक्त बनाने के प्रयास में इस पुस्तक का भी मूल्य कम करना उचित होगा। अच्छा होता यदि इसका हिन्दी भावानुवाद कर दिया जाता। सम्भवत: हिन्दी भाषी क्षेत्रों में इसकी स्वीकार्यता, उपयोगिता एवं लोकप्रियता और भी बढ़ जाती। संभाव्य संस्करणों में इस पुस्तक पर प्राप्त प्रतिष्ठा प्राप्त विचारकों की टिप्पणियों को अवश्य स्थान देना चाहिए। संपादक द्वय साधुवाद के पात्र हैं एवं उनका यह प्रयास श्रेयस एवं प्रेयस दोनों ही है।